

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180734

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No ^H 82 Accession No. H 3313

Author B57 J

Title महु 3 द्वा शकः
जवावी और हः कनाका

This book should be returned on or before the date last marked below.

जवानी और छः एकांकी

लेखक की अन्य रचनाएँ

नाटक

एकला चलो रे	१.००
कालिदास	२.००
क्रान्तिकारी (पुरस्कृत)	२.००
मुक्तिदूत	२.००
अन्तहीन अन्त	प्रेम में

एकांकी संग्रह

विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य	३.००
आदिम-युग और अन्य नाटक	४.००
पर्दे के पीछे (पुरस्कृत)	३.००
सात प्रहसन	३.००
जवानी और छः एकांकी	३.००
समस्या का अन्त	३.००

कविता

मानसी	२.००
युगदीप	प्रेस में
अमृत और विष	प्रेस में
अपरान्ह	प्रेस में
कणिका	प्रेस में
निबन्ध	
साहित्य के स्वर	प्रेस में

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

जवानी और छः एकांकी

०

उदयशंकर भट्ट

०



आत्माराम राण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली

JAVANI AUR CHHAY EKANKI

(One Act Plays)

by

Uday Shankar Bhatt

Rs. 2.50

COPYRIGHT © ATMA RAM & SONS, DELHI-6



प्रकाशक

रामलाल पुरी

संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६



आवरण

योगेन्द्रकुमार लल्ला



प्रथम संस्करण

१९६१



मूल्य

रु० २.५०



मुद्रक

दी सैण्ट्रल इलेक्ट्रिक प्रेस

कमलानगर

दिल्ली-६

दो शब्द

‘जवानी और छः एकांकी’ एक विशेष प्रकार के मेरे नाटकों का संकलन है। पिछले कुछ समय से कई आलोचक मित्रों का अनुरोध था कि इन नाटकों का संकलन अलग से प्रकाशित होना चाहिए जिससे पाठकों और आलोचकों को अलग से इस प्रकार के कृतित्व के विवेचन करने एवं अध्ययन का अवसर मिले।

चिरंजीव प्रमोदशंकर ने इस संकलन का सम्पादन-भार अपने ऊपर लिया। उसका भी एक कारण यह है कि वह मेरे नाटकों में विशेष रुचि लेते रहे हैं।

मैं आत्माराम एण्ड संस के संचालक श्री रामलाल पुरी का विशेष आभारी हूँ कि उन्होंने मेरे सम्पूर्ण साहित्य को प्रकाशित करने का भार लिया है।

आशा है इस संकलन के सभी नाटक, जो नए रूप में प्रकाशित हो रहे हैं, पाठकों का यथेष्ट मनोरंजन कर सकेंगे।

क्रम

जवानी	१
धूम-शिखा	२३
मन का रहस्य	४१
दुर्गा	६७
वर-निर्वाचन	८३
प्रथम विवाह	९९
कुमार-सम्भव	११७

★
जवानी

पात्र

कंदी	:	
आगन्तुक—	:	(विचारक छायापात्र)
वृद्धा स्त्री	:	(स्मृति छायापात्र)
युवती—	:	(जवानी)

दो युवक, थानेदार, सिपाही आदि ।

[एक अघेड़ अवस्था का व्यक्ति बीमारी, शोक और विषाद की मूर्ति बना बैठा है। आँखें भीतर की घँसी हुई। शरीर सूखा हुआ, शिथिल, निस्तेज। बैठे-बैठे जो ऊबने लगा तो उठकर टहलने लगता है। पर जैसे चला नहीं जाता, रह-रहकर बेचैनी हो रही है, बैठ जाता है, फिर टहलने लगता है। जेल के कमरे का वातावरण बिल्कुल शान्त है। चटाई बिछी है। कम्बल का एक छोटा-सा तकिया है। कभी लेट जाया है, कभी बैठ जाता है और एक विशेष टीस-सी अनुभव करता है। पास ही एक घड़ा है, जिसका मुँह टूटा हुआ है जिसमें तली तक ही पानी है। उनके पास मिट्टी का मँला सा बर्तन रखा है। एक रोशनदान है और कोई सामान नहीं है। एक और मिट्टी का बर्तन है जिसके किनारे टूट गए हैं। उसमें थोड़ा-सा दनिया रखी है और उसके पास दूध का एक गिलास है जो आँधा पड़ा है, मालूम होता है कि उसके किनारे पर सूखी मलाई के टुकड़े अभी तक लगे हैं, और पास ही जमीन पर दूध गिरने के कारण भूमि का वह भाग कुछ सफेद हो गया है। कभी-कभी उस व्यक्ति को जोर की खाँसी उठती है तो वह बेचैन हो जाता है। और पास ही एक तरफ थूक देता है। मालूम होता है उस जगह बहुत दिनों से बुहारी नहीं लगी है इसलिए कहीं-कहीं कूड़ा भी जमा हो गया है। एक तरह से यह बन्दी-गृह के कमरे का दृश्य है। इस तरह के दृश्य में ही एक दिन साँभ को कथा प्रारम्भ होती है।]

कंदी—(अपने आप) यह क्या हो गया ? (चारों ओर देखकर) एकदम, अचानक। यह कौन आ रहा है ? (देखता है उसी अवस्था का एक लम्बे कद का व्यक्ति, सफेद लबादा पहने जिसकी दाढ़ी और मूँछों के बाल सफेद हैं, बड़ी-बड़ी आँखें, विशाल उभरा मस्तक, वंत्तहीन मुख, माथे पर शिकन पड़ी हुई घीरे-धीरे आता है।)

आगन्तुक—क्या है, क्यों इतनी चिन्ता करते हो ? आज बहुत दिनों से मैं तुम्हें देख रहा हूँ।

कंदी—(आश्चर्य उत्सुकता तथा ध्यान से उसके चेहरे को देखता हुआ) क्या कहा, बहुत दिनों से तुम मुझे देख रहे हो ?

आगन्तुक—(कमरे में टहलता हुआ) हाँ, बहुत दिनों से मैं तुम्हें देख रहा हूँ। यह ठीक है तुमने मुझे नहीं देखा है, पर मैं तो छिप-छिपकर तुम्हें कई दिनों से देखता आ रहा हूँ। जब तुम केवल जमीन पर बिछी इस दूटी चटाई की तरफ लगातार ध्यान से देख रहे थे तब भी मैं तुम्हें देख रहा था।

कंदी—भूठ है, सर्वथा भूठ। तुम इससे पहले मेरे पास कभी नहीं आए। और इस बन्दी-गृह में तुम आ ही कैसे सकते थे ? न जाने अब भी तुम कैसे आ गए, किसी ने रोका नहीं ? यहाँ तो कोई भी नहीं आ सकता !

आगन्तुक—(रुककर) जब तुम इस मकान की मैली दीवारों की तरफ बड़े ध्यान से आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे तब भी मैं यहीं था।

कंदी—पर उस समय भी मैंने तुम्हें नहीं देखा। तुम्हारे मुख से ज्ञात होता है तुम सत्य बोलते हो किन्तु तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं होता।

आगन्तुक—जिस समय तुम अपने शरीर की ओर बड़ी गम्भीरता से देखकर विचार कर रहे थे और सोच रहे थे कि यह सब एकदम क्या हो गया.....

कंदी—हाँ, तब तुम कहाँ थे ?

आगन्तुक—यहीं तो।

कंदी—आश्चर्य।

आगन्तुक—(टहलता हुआ) जब उत्तम भोजन का विचार करके तुमने देखा कि बर्तन में दलिया सूखा हुआ है और दूध का गिलास औधा पड़ा है, अन्त में तुमने थोड़े-से दलिए पर ही सन्तोष किया और देखा कि पानी का बर्तन भी दूट गया है। हारकर तुमने इस दूटे किनारे वाले घड़े से पानी निकालकर पिया और पीकर लम्बी साँस लेते हुए इसी चटाई पर रोते-रोते सो जाने का यत्न किया, उस समय भी मैं यहीं था।

कंदी—(जोर से चिल्लाकर) क्या तुम जादू जानते हो ? तुम कोई भी हो, क्या तुम बता सकते हो यह मुझे क्या हो गया है ? (आगन्तुक कुछ भी नहीं

बोलता सोचने लगता है ।) मैं बहुत दुखी हूँ भाई । इतना दुख मुझे कभी नहीं हुआ । जीवन मे कभी इतना दुख, इतना आश्चर्य नहीं हुआ । (आगन्तुक फिर भी कुछ नहीं बोलता ।) ऐसा ज्ञात होता है कि एकदम किसी ने स्वर्ग से नरक में लाकर पटक दिया । कैसा स्वप्न था !

आगन्तुक—स्वप्न ?

कैदी—हाँ, स्वप्न ही तो उसे कहूँगा ।

आगन्तुक—कदाचित् वह सत्य भी तो हो सकता है !

कैदी—(एकदम चिल्लाकर) सत्य, सत्य कभी नहीं, वह सत्य कैसे हो सकता है । वह तो सचमुच स्वप्न था । और स्वप्न भी उसे कैसे कह सकता हूँ, वह तो जैसे सब कुछ साक्षात् था । वह साहस, वह सौन्दर्य, वह नशा सब कुछ अपूर्व ! क्या तुम बता सकोगे वह क्या था ?

आगन्तुक—पर अब तुम उसका इतना विचार क्यों करते हो, जो चला गया वह आ तो नहीं सकता ?

कैदी—एक लहर उठी और किनारे से टकरा कर जैसे खो गई हो । अब तो मैं दुखी हूँ एकदम दुखी । क्या कहूँ भाई, तुम बैठ क्यों नहीं जाते ? बैठो तो सब हाल तुम्हें सुनाऊँ ।

आगन्तुक—(गम्भीर विचारों में टहलता हुआ) हूँ, संसार में सभी लोग तो ऐसे हैं । तुम्हीं अकेले तो नहीं ?

कैदी—(आगन्तुक के कदम के साथ ऊपर से नीचे तक दृष्टि डालता हुआ) अजीब आदमी हो ! अनजान आदमी, बिना पूछे यहाँ घुस आए और मेरे ही सामने इस तरह टहल रहे हो । तुम्हें आने किसने दिया, क्या पहरवाले मर गए । अरे भले मानस, कुछ कहोगे भी कि किस लिए यहाँ आए हो ?

आगन्तुक—(सोचता हुआ) मैं सोच रहा हूँ कि तुम्हें क्या हो गया ?

कैदी—(आश्चर्य से) बिना मेरी बात सुने, बिना मेरी तरफ देखे । यह भी अनोखा सोचना है तुम्हारा !

आगन्तुक—मनुष्य क्यों व्यर्थ की चिन्ताएँ, निक्कमी आशाएँ मोल लेकर

अपने जीवन को विषमय बना देता है, यह सोचता हूँ ।

कैदी—.....(घूरकर) तो मेरी बात भी सुनोगे या अपनी ही कहे जाओगे ?

आगन्तुक—(बिना उसकी तरफ देखें) सब की चिन्ताएँ, सब की आशाएँ एक हैं । सब संसार एक सा ही सोचता है, एक ही मार्ग पर चलता है । एक ही ओर सब की दृष्टि रहती है ।

कैदी—तो बोलते जाओ, मेरी एक भी न सुनना, न किसी का दुख देखना, न किसी को सन्तोष देना । हाय गम रे ! (झोंका मुँह करके तकिए के सहारे खेद जाता है ।)

आगन्तुक—(टहलना बन्द करके गम्भीरता से) तुम यही तो सोच रहे हो कि तुम्हारा साहस, तुम्हारा सौन्दर्य, तुम्हारा प्रेम, एकदम न जाने कैसे, कहाँ मिलीन हो गए ।

कैदी—(सिर उठाकर) हाँ यही तो सोच रहा हूँ पर तुमने कैसे जाना ?

आगन्तुक—यह जानना कोई बड़ी बात नहीं है, और फिर इसके लिए चिन्ता किस बात की ?

कैदी—(खड़ा होकर) चिन्ता किस बात की ? एक का घर लुट गया और तुम कहते हो चिन्ता किस बात की । जैसे रात-भर मैं सब कुछ हो गया हो । और इस समय मैं कितनी दीन-हीन अवस्था में पड़ा हूँ ।

आगन्तुक—(टहलना जारी रखते हुए) हँ ?

कैदी—न जाने वे सुन्दर कपड़े क्या हुए ? वह स्वर्ण-सा मुख, वह सुन्दर मूर्ति, पर अपने आप ही तो मैंने वह खोया है । अपने पैर में आप ही तो कुल्हाड़ी.....!

आगन्तुक—वह क्या तुम्हारे वय की बात है ? बादलों में कड़कती बिजली को कौन रोक सकता है, बोली ?

कैदी—मैं रोक तो सकता था पर रोका नहीं । जैसे कोई तेज शराब की बोतल चढ़ा जाए और कहे कि मुझे इसका नशा नहीं चढ़ सकता । वैसे ही उसको रोकना मेरे लिए असम्भव हो गया भाई, पर जाने दो तुम्हीं ने कहा कि

जो गया उसका शोक करना व्यर्थ है ।

आगन्तुक—इतना होते हुए भी मनुष्य के पास एक ऐसी शक्ति है जिससे वह बुराई से बच सकता है, तूफानी सागर में बिना नाव के तैरता हुआ भी किनारा पा सकता है ।

कैदी—तुम सचमुच मुझे समझदार मालूम होते हो, ठीक यही बात उसने भी कही थी ।

आगन्तुक—(चटाई पर बैठकर) सभी बुद्धिमान एक-सी बात कहते हैं ।

कैदी—क्या ही अच्छा होता मैं वह बात मानता तो आज मुझे यह दिन न देखना पड़ता !

आगन्तुक—विवेक हमेशा पीछे आता है और उमंगें पहले ।

कैदी—तो क्या अब किसी भी तरह, एक बार भी वह मुझे मिल नहीं सकती ?

आगन्तुक—कौन ?

कैदी—(एकदम विह्वल सा होकर आँखें बन्द कर लेता है और पागल की तरह चिल्लाने लगता है) क्या एक बार भी न आओगी ? (आँखें खोलकर) इस बार तुम्हें पा सकूँ तो अपनी सम्पूर्ण आराधना के प्रायश्चित्त से तुम्हारे सामने अपने को समर्पण कर दूँ । इस जीवन से तो मर जाना अच्छा है । एक बार यदि कहीं पा सकूँ... (देर तक उसी अवस्था में पड़ा रहकर) नहीं अब सम्भव नहीं है ।

आगन्तुक—मैं केवल एक ही बात कह सकता हूँ कि तुम उसे भूल जाओ । इसी में तुम्हारा कल्याण है ।

कैदी—भूल जाऊँ ? (सिर उठाकर) तुम नहीं समझ सकते कि पीछे मैं क्या छोड़ आया हूँ ।

आगन्तुक—नहीं, मैं नहीं जानता । मैं तो इतना ही जानता हूँ जो सामने आए उसे सुखपूर्वक भोगो !

कैदी—तुम मूर्ख हो, तुम्हारे आँखें नहीं हैं ।

आगन्तुक—(डपटकर) देखो तुम मुझे मूर्ख नहीं कह सकते । और चाहे

जो कुछ कहो, मैं मूर्ख नहीं हूँ। मैं तुम्हें सहायता देने आया हूँ।

कंदी—मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता नहीं। (सामने देखकर) यह देखो वह फिर आ रही है। तुम हट जाओ (सामने देखकर) आओ, आओ। मैं इतनी देर से तुम्हारी ही प्रतीक्षा तो कर रहा था। (आगन्तुक जमीन की तरफ आंखें गड़ाए सोचने लगता है। पदध्वनि सुनते ही फिर ऊपर की ओर देखता है) बहुत दिनों से मुझे याद आ रही थी। तुमने मुझे कितना बेचैन कर डाला है? (हाथ बढ़ाकर पकड़ने लगता है) पर मैं तुम्हें बिठाऊँ कहाँ? तुम्हारे कपड़े इतने सुन्दर, तुम्हारा मुख इतना मोहक, पर मैं तुम्हें बिठाऊँ कहाँ? (आगन्तुक से) तुम चटाई छोड़कर नीचे बैठो। यह स्थान तुम्हारे लिए नहीं है। आओ सुन्दरी, (घबड़ाकर कपड़ा बिछाने के लिए दौड़ता है पर सिवाय कम्बल के तकिए के वहाँ कोई कपड़ा नहीं मिलता आखिर अपना फटा कुरता फाड़कर बिछा देता है) आओ, तुम यहाँ बैठो सुन्दरी! (आगन्तुक जरा पीछे हटकर बैठ जाता है।)

स्त्री—रहने दो, तुम ऐसा क्यों करते हो? मैं बैठूंगी, मैं कभी बैठती हूँ क्या? मैं बैठती नहीं हूँ। केवल तुमसे दो बातें करने आई हूँ।

कंदी—देवि, तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया। तुम्हारे खड़े रहने से मुझे दुख होगा।

स्त्री—नहीं, मैं अस्पृश्य हूँ।

कंदी—(आश्चर्य से) अस्पृश्य? इतनी सुन्दर और अस्पृश्य! भूठ है। तुम अस्पृश्य हो तो भी तुम मुझे प्राणों से प्रिय हो। मैं तुम्हारे रूप-सौन्दर्य, मोहक मुग्धकर-आनन पर अपना सर्वस्व निछावर कर सकता हूँ। प्रियतमे! आओ यहाँ बैठो। (आगन्तुक से) हटो जी, जरा और हट जाओ न। तुम चले ही क्यों नहीं जाते। जाओ मैंने तुम्हें बुलाया तो नहीं था। जाओ, मुझे तुम्हारी किसी सहायता की आवश्यकता नहीं है।

स्त्री—नहीं रहने दो। मैं बैठ नहीं सकती। अरे तुमने कुरता क्यों फाड़ डाला?

आगन्तुक—यह स्त्री वाचाल है। तुम इसकी बातों में न आना, समझे।

कंदी — (जोर से धरकर चिल्लाता हुआ) तुम जाते हो कि नहीं ? जाओ । मैं इतनी सुन्दर स्त्री के प्रति ये अपमानजनक वाक्य नहीं सुन सकता । हटो ।

स्त्री—रहने दो, बैठे रहने दो इसे । किन्तु याद रखो जहाँ यह रहता है वहाँ मैं नहीं आ सकती । इसलिए मैं जाती हूँ ।

आगन्तुक—नहीं, यह बात असत्य है । यह स्त्री बड़ी मायाविनी है ? इससे तुम्हारा भला बिलकुल नहीं हो सकता ।

स्त्री — (क्रोध से) थोथे बुजदिल, क्यों तू मेरी निन्दा करता है इस बूढ़े को तुमसे कोई लाभ नहीं हो सकता । (जाती है ।)

आगन्तुक—(शान्त भाव से) मुझे तुम दोनों से कुछ भी नहीं कहना । मैं तो केवल तुम्हारी सहायता करने आया था । दुखी को सांत्वना देना ही मेरा काम है । यदि तुम्हें मेरी सहायता की आवश्यकता नहीं है तो मैं जाता हूँ ।

कंदी—(दोनों को जाते देखकर) ठहरो, क्या तुम दोनों कोई समझौता नहीं कर सकते ? मैं तुम दोनों को चाहता हूँ ।

दोनों—हमारी कोई लड़ाई नहीं है ।

कंदी—इम आगन्तुक का चेहरा भी मुझे भला लगता है । इसे देखकर मुझे लगता है कि चाहे इससे मुझे लाभ हो या न हो यह मेरे पास ही रहे । और सुन्दरी तुम्हारे बिना तो मैं रह ही नहीं सकता । तुम्हें देखकर तो मेरा रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठता है । क्या एक बार मैं तुम्हारा आलिगन नहीं कर सकता !

आगन्तुक—यही तुम्हारा पतन है ।

स्त्री—(क्रोध से) फिर वही, देखो, तुम इसे बहकाओ मत !

आगन्तुक—मैं बहकाता नहीं हूँ, किन्तु मैं देखता हूँ, यही इसका पतन है ।

स्त्री—(क्रोध से आगे बढ़कर) तुम्हारा इतना साहस । धूर्त, पाजी !

आगन्तुक—(उसी भाव से) इसी से तो तुम मायाविनी हो ।

स्त्री—मैं मायाविनी हूँ, और तुम ?

आगन्तुक—देखो मित्र, तुम इसकी बातों में न आना । मेरा काम है मनुष्य को सावधान करना । यह स्त्री बड़ी भयंकर है ।

स्त्री—यद्यपि मैं अस्पृश्य हूँ किन्तु यदि दूर से ही तुम मुझे देखते रहे तो

भी मैं तुम्हें सुख से विभोर कर दूंगी ।

आगन्तुक—वहीं तुम्हारे पतन की सीढ़ी तैयार हो जाएगी ।

कंदी—(आगन्तुक से) देखो, यहाँ से चले जाओ । मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है ।

आगन्तुक—अच्छी बात है, तो मैं जाता हूँ । जाता हूँ । (चला जाता है)

स्त्री—देखो (पास जाकर) तुम बैठे हो । देखो; उसे मत जाने दो । उसके बिना तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो जाएगा ।

कंदी—(मुग्ध सा होकर) किन्तु प्रिये, यदि तुम, मेरे पास रहोगी तो मुझे किसी सुख की आवश्यकता नहीं है ।

स्त्री—तुम कवि तो नहीं हो ?

कंदी—उससे भी अधिक ।

स्त्री—प्रेमी रहे हो ?

कंदी—घोर प्रेमी, डाकू और न जाने क्या-क्या ?

स्त्री—तब भी उसे छोड़ना ठीक नहीं है । जाओ उसे बुलाओ ।

कंदी—मैं नहीं जाऊँगा । आओ, मैं तुम्हारा आलिंगन कर लूँ । तुम मेरे हृदय का स्पन्दन हो प्रिये ! (आगे बढ़ता है)

स्त्री—(पीछे हटकर) क्या करते हो ? याद रखो तुम मुझे पा नहीं सकते ।

कंदी—अब मुझसे रहा नहीं जाता, आओ, हम दोनों एक हो जाएँ । (उठकर दौड़ता है पर स्त्री उसके हाथ से बार-बार छिटक जाती है । वह बार-बार पकड़ने दौड़ता है पर पकड़ नहीं पाता । अन्त में हारकर) दुष्टे, धूर्त ।

स्त्री—मैंने तुमसे कहा न कि तुम मुझे पा नहीं सकते । जाओ, अपने उस मित्र को बुलाओ । जाओ । अब वही तुम्हारा साथी है ।

कंदी—मैं तुम्हारी बात मान नहीं सकता । क्या यह सच है कि तुम मायाविनी हो ?

स्त्री—नहीं, मैं मायाविनी नहीं हूँ ! मैं तुम्हें छलना भी नहीं चाहती । तुम इतने दुखी मत हो, मैं तुम्हें वरदान देना चाहती हूँ ।

कंदी—तुम कौन हो ?

स्त्री—यह जानने का यत्न मत करो । जो तुम्हें अभीष्ट हो वह मुझसे माँग लो । मैं तुममें लालसा जगा सकती हूँ; माँगो ।

कंदी—यदि मैं तुम्हें ही चाहूँ तो ?

स्त्री—यह सम्भव नहीं है । तुम मुझे पकड़ नहीं सकते । मुझे पा सकना सम्भव नहीं है ।

कंदी—(सोचकर) हूँ, तो फिर मुझे कुछ नहीं चाहिए ।

स्त्री—कुछ भी नहीं ?

कंदी—(खोझकर) कुछ भी नहीं । तू छलना है । तू मायाविनी है । जा चली जा । हाय, मेरे दुख का अन्त नहीं है (तकिए पर सिर रखकर आँधा हो जाता है ।)

स्त्री—मैं जाती हूँ, जब तुम नाराज होते हो तो मैं जाती हूँ । पर मैं इसलिए आई थी कि तुम्हें प्रसन्न कर सकूँ (जाने की आहट सुनाई देने लगती है ।)

कंदी—(सिर उठाकर) ठहरो, ठहरो मैं बुलाता हूँ । देवि ठहरो !

स्त्री—(लौटकर) अच्छा तुम क्या चाहते हो ? माँगो ।

कंदी—माँगूँ, ठहरो, मुझे सोचने दो । हाँ याद आया (उसकी ओर ध्यान से देखते रहकर) तुममें मेरी प्रियतमा की छवि है ।

स्त्री—हो सकता है ।

कंदी—तुम बहुत सुन्दर हो ।

स्त्री—यह भी सम्भव है ।

कंदी—तुम्हारा मुख देखकर मैं अपने आप को भूल जाता हूँ ।

स्त्री—यह कोई वरदान तो नहीं है ।

कंदी—हाँ, वरदान माँगूँ । पर मुझे तो बहुत दुख है । आखिर मुझे यह क्या हो गया ?

स्त्री—देखो, मुझे और भी काम है ।

कंदी—क्या माँगूँ, मैं तो तुम्हें ही चाहता हूँ । यदि एक बार तुम...

स्त्री—जाओ, अपने मित्र को बुला लाओ वह अभी बहुत दूर नहीं गया

होगा । फिर तुम लौटकर देखना । तुम्हें वही सब दिखाई देगा ।

कैदी—क्या कहा ? देखो, तुम चली मत जाना । मैं उसे बुलाकर अभी आता हूँ ।

स्त्री—अच्छा ।

[कैदी निकल जाता है । और एकदम जोर से आंधी चलने लगती है अंधेरा हो जाता है । यहाँ तक कि स्टेज पर अंधकार छा जाता है । कुछ देर तक इसी प्रकार रहता है फिर मालूम होता है कि वह भू-भाग सुन्दर बन गया है । सब ओर फूल खिले हैं । सुगन्ध से महक उठा है । इतने में नेपथ्य में सिंह के गरजने, और एक आदमी के उससे युद्ध करने की आवाज सुनाई देती है । दो तीन मिनट के बाद सिंह के दहाड़कर भागने और शराब की बोतलें लिए एक मनुष्य के रंगभूमि में आकर बैठने का दृश्य दिखाई देता है । वह व्यक्ति गठीले, सुन्दर शरीर का नवयुवक है । वह उठकर इधर-उधर देखकर बैठ जाता है । उसके शरीर पर जो युद्ध के खरोंच लगे उन्हें लापरवाही से पोंछता है । इतने में नेपथ्य में एक मादक गीत की ध्वनि सुनाई देती है । मालूम होता है गानेवाला धीरे-धीरे नूपुर ध्वनि के साथ उधर ही आ रहा है ! युवक उत्सुक ध्यान से गीत सुनने लगता है ।]

गीत

मैं उमंग भरी
स्वर सजीले, मलय मंदरस
दृग नुकीले, हृदय परवश
भरे आसावरी
मूक यौवन मद छबीली,
चलित चितवन मन रसीली
वारुणी नद तरी
मैं उमंग भरी

[युवक देखता है एक युवती एक हाथ में वीणा और दूसरे हाथ में तलवार लिए मन्दगति से गाती आ रही है । युवक की तरफ बिना देखे सामने की एक

शिला पर बैठ जाती है और गाती रहती है। युवक उसी स्त्री की ओर कन-
खियों से देखता है। इतने में युवती उधर देखती है। और मुस्कराने लगती है।
युवक लज्जित होकर वहाँ से हट जाने की चेष्टा करता है।]

युवती—(उठकर) युवक, क्या तुम्हें यह मेरा गीत पसन्द आया ?

युवक—(उसी लज्जा से) रमणी की ओर देखता रहता है।

युवती—बोलो युवक, क्या तुम्हें यह गीत अच्छा लगा ?

युवक—(जाते हुए) मुझे नहीं मालूम।

युवती—ठहरो ! (पास जाकर उसका हाथ पकड़ती हुई) घबराओ मत।
तुम देखते हो, यह सब कितना सुन्दर है ?

युवक—(साहस करके) क्या सुन्दर है ?

युवती—यह प्रकृति, आकाश, फूल, ऋतु।

युवक—कुछ-कुछ देख रहा हूँ।

युवती—वन, उपवन, नदी, तालाब, नक्षत्र, चन्द्रमा क्या ये तुम्हें विचित्र
नहीं दीख पड़ते ?

युवक—(स्वप्न से जागकर) यह मुझे क्या हो रहा है ! बिजली-सी दौड़
रही है। मेरा हाथ छोड़ दो। (हाथ छुड़ाना चाहता है) सब कुछ विचित्र है।
अच्छा, तुम्हें मालूम है मैंने अभी एक सिंह को पछाड़ा है।

युवती—हाँ, मालूम है।

युवक - कैसे, तुम उस समय कहाँ थी ?

युवती—तुम्हारे पीछे खड़ी होकर देख रही थी। इसीलिए तो मैं तुम्हारे
पास आई हूँ।

युवक—पर आते ही तुम तो इस तरह बैठ गई जैसे तुमने मुझे देखा ही
न हो।

युवती—हाँ।

युवक—क्यों ? तुम कौन हो ? तुम्हें मालूम है उस दिन डाका डालकर
गाँव से लौटते हुए मैंने एक बरसाती नदी तैरकर पार की थी। उस समय तैरते
हुए मुझे एक बार तो ऐसा लगा मानों इस अथाह सागर में मैं तिनके की तरह

हैं, उन थपेड़ों में बहकर अब चला, अब चला हो रहा था ।

युवती—मुझे मालूम है ।

युवक—तुम उस समय कहाँ थी ?

युवती—वहीं, तुम्हें उन लहरों से युद्ध करके विजय पाने में तुम्हारी सहायता कर रही थी ।

युवक—क्या, तुम सहायता कर रही थीं ? भूठ । तुम्हें मेरा बल मालूम है ?

युवती—नहीं, भूठ नहीं ।

युवक—तुम मुझे जानती ही नहीं । फिर तुम कोमल स्त्री मुझे सहायता क्या कर सकती हो ?

युवती—अच्छी तरह ।

युवक—आश्चर्य है ! अच्छा, उस दिन का हाल तुम्हें ज्ञात है जब मैंने अपने पड़ौसी वल्लभ की लड़की को कालेज से आते हुए उड़ा लिया था ।

युवती—हाँ ।

युवक—तुम्हें कैसे मालूम, क्या तुम जादूगरनी हो ?

युवती—मैं वही थी । उस समय मैं तुम से दूर न थी ।

युवक—पास थी ।

युवती—हाँ, बहुत पास ।

युवक—यह महान् आश्चर्य है ! अच्छा, फिर तुमने क्या देखा ? मालूम होता है तुम मेरे मन का भाव जान लेती हो । अब सोचूंगा ही नहीं । अच्छा बताओ फिर क्या हुआ ?

युवती—उस समय चाँदनी रात थी । नगर के बाग के पास लतिका अपनी एक सहेली के साथ घर लौट रही थी । इतने में तुमने उसे पकड़ लिया । दूसरी तो एकदम भाग गई । वह बेचारी रह गई । तुम उसे बाग की तरफ घसीटे लिए जा रहे थे । और वह रोती हुई बालिका लतिका तुम्हारे चंगुल से बचने का भरसक यत्न कर रही थी । जब उसने देखा कि किसी तरह भी वह छूट नहीं पा रही है तब उसने एक पत्थर उठाकर तुम्हारे सिर पर दे मारा । इतने

पर भी तुम हँसते रहे ।

युवक—उसके बाद ।

युवती—और उसने अपना सिर भी पत्थर से फोड़ लिया । अन्त में तुमने उस बेहोश लड़की को उठाकर उसकी विधवा माँ के पास पहुँचा दिया !

युवक—क्यों पहुँचा दिया ?

युवती—उस समय यौवन निष्पाप था ।

युवक—(हँसकर) और माँ को मालूम नहीं हो सका कि मैंने ही उसकी यह दशा कर दी है । मैंने उसकी माँ को बताया कि दुष्टों के चंगुल से छुड़ाकर उसे लाया हूँ । अहा हाः ! मनुष्य में बुद्धि चाहिए । वह बुढ़िया मुझ पर आज तक प्रसन्न है । एहसान मानती है ।

युवती—परन्तु युवक तुम भूलते हो । अत्याचार बल का प्रदर्शन नहीं है ।

युवक—तुम पागल हो । सचाई, नेकी, सब बनावटी बातें हैं । मैंने भी तो उस बुढ़िया के सामने अपने को पवित्र, साहसी बताया ?

युवती—तो देखो, मैं ऐसे आदमियों के पास अधिक दिन तक नहीं रह सकती जो मनुष्यता के नाम पर, बल और शक्ति के नाम पर जीवन से खिल-वाड़ करते हैं ।

युवक—तो क्या तुम समझती हो मनुष्य नपुंसक बनकर केवल दया दिखाने के लिए ही पैदा हुआ है ? उसने प्रारम्भ से संघर्ष करना दूसरों पर अपने को विजयी बनाना सीखा है । इच्छा उसकी स्त्री है, दुर्बल उसका मेवक है । कानून उसकी चाह है, वह जो चाहता है वही न्याय है ।

युवती—परन्तु अन्त में सिर पकड़कर पछताना भी तो उसके जीवन का एक अंग बन जाता है । अच्छा मैं... (चलने लगती है)

युवक—(आगे बढ़कर) तुम्हें बताना होगा कि तुम कौन हो ? तुम्हारा सौन्दर्य अनुपम है । मनुष्य तुम्हारे आगे नतमस्तक हो जाता है । तुम्हें देखते जी नहीं अघाता, एक उन्माद-सा हो जाता है; मैंने बड़े-बड़े पशुओं को पछाड़ा है, डाके डाले हैं, हत्याएँ की हैं, नदियाँ, जो बरसात से भरकर प्रलय की चाल से चलती हैं अंधेरी रात में अनायास ही पार की है । पर मैं तुम्हे तो जैसे देखते

ही रहना चाहता हूँ। तुम बताओ तुम कौन हो, देवी, दानवी, पगी या मानवी ? मैं तुम्हारे सामने आत्मसमर्पण करता हूँ। (भुक्कर) बताओ तुम कौन हो ?

युवती—युवक, मैं स्वर्ग से मिला हुआ विधाता का वरदान हूँ। जो तुम्हें सोने का मुकुट पहनाने आई हूँ। दुख में तुमको सुधी बनाना मेरा काम है। मैं तुम्हें वसन्त के कुसुमों से अभिषिक्त करने आई हूँ। सुधांशु की किरणें बिछाकर तुम्हारे उत्तप्त मन को शीतल कर देने आई हूँ। तुम मुझे काँटों में मत घसीटना। (युवक मुग्ध होकर उसकी बात सुनता रहता है।) विश्वास करो मैं तुम्हारी हूँ। मैं तुम्हारे हृदय की आराध्य भावना हूँ। जब तुम सिंह से लड़ रहे थे तब भी मैं तुम्हारे साथ थी, वल्लभ की लड़की को बचाने में मेरा ही हाथ था। विश्व का समस्त सौन्दर्य, सम्पूर्ण सुख, आत्मा का चमत्कार लेकर मैं तुम्हारे पीछे छाया की तरह चलूंगी।

युवक—आश्चर्य है। देखता हूँ ऐसा पहले कभी नहीं हुआ।

युवती—आओ तुम मेरा आलिङ्गन करो मैं केवल एक बार ही जीवन में आती हूँ। (आगे बढ़ती हुई) मैं भयावनी नहीं हूँ। मैं तुम्हाग वरदान हूँ। जीवन की आशा हूँ। मैं बल हूँ, बुद्धि हूँ, विद्या हूँ, शक्ति हूँ, आओ मेरा चुम्बन लो। देखो, मैं मद हूँ पर मद से डरती हूँ। मैं वासना हूँ पर वासना से दूर रहने पर ही मैं तुम्हारे पास रह सकूंगी। लोग मुझे पापिनी कहते हैं पर पाप मेरा क्षय है।

युवक—आश्चर्य है। तुम्हारी सब बातें रहस्यमयी हैं।

युवती—हाँ, मैं रहस्य हूँ। भूलना नहीं भला।

[युवक को मालूम होता है जैसे वह उसमें ही समा गई है।]

युवक—हैं, (अपनी ओर देखकर) यह मुझे क्या हो गया है ? सब कुछ बदल गया हो जैसे। न मालूम यह कौन थी ? आज मैं, ज्ञात होता है, अनन्त बल का अधिपति बन गया हूँ। मुझे संसार तिनके सा तुच्छ दिखाई देता है। कोई शक्ति ऐसी नहीं जिसको मैं जीत न सकूँ। यह क्या है, (सामने बोटलों को पाकर) शराब भी तो यौवन है। क्यों न जड़ शराब से यौवन की शराब

को चमकाऊँ। (पास रखी शराब की एक बोतल खोलकर पीता है, दूसरी पीता है अन्त में बेहोश होकर वहीं एक कोने में गिर पड़ता है। दो साथी आते हैं।)

पहला—लो, सरदार यहाँ पड़े हैं।

दूसरा—शराब पी होगी। यह भी नहीं मालूम कोई पहचान ले तो क्या होगा ?

पहला—भाई, आदमी बड़ा दबंग है। आदमी तो बहुत देखे पर इतना साहस विरले में ही पाया। जरा छाती तो देखो।

दूसरा—इसमें क्या सन्देह है। अभी उस दिन एक रीछ से लड़ाई हुई। बिना भाले के खाली हाथ लड़े। मैंने कहा हथियार पास में जरूर रखना चाहिए, बोले तुम पागल हो। पशु के पास कौन-सा हथियार है मैंने कहा प्रकृति ने स्वाभाविक ढंग से प्रत्येक पशु को हथियार दिए हैं। दाँत, नाखून, पंजे। जबाब दिया—हमें भी तो सब मिला है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी चीज मिली है बुद्धि।

पहला—मुना है पढ़े-लिखे भी बहुत हैं।

दूसरा—बड़े ऊँचे वंश के पढ़े-लिखे। इनके बाप न जाने कही सरकारी अफसर थे। (युवक आँखें खोल देता है और एक बार बिना इधर-उधर देखे फिर शराब की ओर हाथ बढ़ता है। दोनों रोकते हैं) बहुत शराब पीना ठीक नहीं सरदार।

पहला—इस जगह, इस तरह खुले में हम लोगों को कोई पहचान ले तो मुसीबत आ जाएगी। इच्छा हो तो थोड़ी-सी पीजिए ! क्यों ?

युवक—(नशे में) रहने...दो। रहने दो। कुछ परवा नहीं है। खोलो... हट जाओ...शराब...शरऽऽब। वह गई ?

दूसरा—(भुक्कर) कौन।

युवक—वही...न जाने...कौन...(आँखें खोलकर) बहुत दिनों से मेरे साथ है। बहुत बातें कहकर गई है। न जाने...(सिर पर हाथ रखकर सोचता हुआ) कौन थी ? बहुत कुछ कहा...न जाने क्या-क्या कहा ? अहा हाः। (हँसता है।)

पहला—हम लोगो को यहाँ से अब चल देना चाहिए। ऐसा न हो कि कोई देख ले।

दूसरा—इस समय आप अपने आपे में नहीं हैं।

युवक—(लापरवाही से) कोई परवाह नहीं। एक बोतल और खोलो।

पहला—क्या आप नहीं समझते कि हम लोग सुरक्षित नहीं हैं। पास ही सामने सड़क है। लोग आ-जा रहे हैं।

दूसरा—पहला सरदार भी इसी शराब के नशे में पकड़ा गया था।

पहला—पर इसके बिना हम लोगों का काम भी तो नहीं चलता। थोड़ी-सी तुम भी पियो न !

युवक—खोलो न भाई। यह सोच-विचार का समय नहीं है। समय उड़ता जा रहा है। ऐसा आनन्द फिर नहीं मिलेगा। अभी तो वह मेरे पास आई थी। आः कितना आनन्द है। यहाँ कोई नहीं आ सकता। (शराब की बोतल एकदम 'गट-गट' कर के पी जाता है। और खाली बोतल दूर फेंक देता है। पहला आदमी भी पीता है और दोनों नशे में धुत्त हो जाते हैं।)

दूसरा सिपाही—इन दोनों का भाग्य ही खराब है तो मैं क्या करूँ।

[इतने में कुछ आहट आती है। और दूसरा व्यक्ति उस तरफ देखकर धीरे-धीरे सरदार को जगाता है। पर वह जगाने की जगह बकने लगता है। फिर उसे उठाकर ले जाने की कोशिश करता है। इतने में कुछ सिपाही और थानेदार आ जाते हैं।]

एक सिपाही—यह कौन है ?

दूसरा—वे लोग यहाँ नहीं हो सकते !

थानेदार—फिर भी देखने में कोई हर्ज नहीं है। (पास जाकर देखता है और दौड़कर दूसरे व्यक्ति को जो उन्हें उठा रहा था एकदम पकड़ लेता है) कौन है ?

दूसरा—मुसाफिर।

थानेदार—यहाँ क्या कर रहे थे ?

दूसरा—यह मेरे भाई है इन्होंने शराब पी रखी है। इन्हें उठा रहा था।

एक सिपाही—तूने यहाँ और किसी को देखा ?

दूसरा—किसको ?

तीसरा—उन डाकुओं को जिन्होंने लूटकर, अत्याचार करके शहर-भर में ऊधम मचा रखा है ।

[थानेदार जब से चित्र निकालकर देखता है और पहचान कर ।]

थानेदार—यही वह डाकू है । (खबरदार) पकड़ लो जाने न पावे ।

युवक—(होश में आता हुआ) तुम आई थीं—न जाने क्या कह गई ? एक बार फिर आओ । इस बार...मत जाओ । कितना आनन्द है । सब संसार तुच्छ-सा दिखाई देता है ।

पहला साथी—जो पीता है वही जानता है । ऐ मूर्ख तूने पी ही नहीं । पियो, पी, एक बार फिर पी । बार-बार पी जब तक तेरे होश उसमें डूब न जाएँ । कितना मजा है ।

[सिपाही उन तीनों को पकड़कर बांधने लगते हैं, पर वे दोनों अपने होश-हवास में न होने के कारण कुछ भी नहीं कर पाते । दूसरा आदमी भागने का यत्न करता है परन्तु भाग नहीं पाता तीनों पकड़े जाते हैं । सिपाही बांधकर ले जाते हैं । अंधकार छा जाता है फिर धीमे-धीमे प्रकाश में दिखाई देता है कि जेल के सीकड़ों के भीतर वह व्यक्ति आगन्तुक के साथ चटाई पर बैठा है ।]

कंदी—अभियोग चलने पर मुझे फाँसी की सजा हुई थी, अपील के कारण वह सजा फाँसी से हटकर चौदह साल की हो गई । इसीमें दस साल बीत गए हैं । सजाएँ कई होने के कारण अभी न जाने कितने दिन और इस कैदखाने में रहना पड़ेगा । एक बार उपद्रव किया तो बेंतों की सजा मिली । फिर मैं बीमार हो गया । अस्पताल से लाकर इस कोठरी में डाल दिया गया हूँ । शायद घड़ा, गिलास और दलिया डाक्टर की आज्ञा से मेरे पास रखा गया है । देखा तुमने, वह युवक मैं ही हूँ ?

आगन्तुक—सो तो समझ रहा हूँ ।

कंदी—इस नारकीय जीवन में दस साल हो गए हैं । कई बार मार पड़ी, बीमार भी पड़ा हूँ । पहले तो मैंने भी उपद्रव किए पर अब सब सामर्थ्य नष्ट हो गई है । बीमारी ने सब शरीर भीना कर दिया ।

आगन्तुक—वे सब पाप जो तुमने डाकू-जीवन में किए थे, सामने आए या नहीं ?

कंदी—हाँ, एक-एक करके सभी आए ।

आगन्तुक—और वह स्त्री जो उस दिन शराब पीकर पकड़े जाने से पहले आई थी ?

कंदी—हाँ, वह भी आई थी एक दिन । (लेट जाता है) साँस नहीं आती ठहरो जरा साँस ले लूँ । (उठकर घड़े से उलट कर पानी पीता है) फिर लेट जाता है । वह आई थी । जब मेरे साहस का दीपक बुझ रहा था । बीमारी ने मुझे तोड़ डाला था । तब वह एक दिन आई । पर मैं तो उसे पहचान भी न सका था । बूढ़ी खाँसी से खुर-खुर करती हुई, मुरझाया हुआ चेहरा, रोती-सी सूरत, तलवार की जगह एक नर-कंकाल हाथ में लिए वह आई थी ।

आगन्तुक—क्या कहा उसने ?

कंदी—बहुत-सा तो याद ही नहीं आता, लेकिन शायद कुछ भीमा-भीमा याद आता है ठहरो (खाँसकर थूकता है और थोड़ी देर ठहरकर) कहा था—“तुमने मेरा बड़ा अपमान किया मुझे फूलों से निकालकर काँटों में घसीटा, मैं तुम्हारे पीछे सिपाहियों के डंडों से पिटी, गालियाँ खाईं, बेंत खाए, भूखी रही । तुमने मेरा सदुपयोग नहीं किया । तुमने मेरी कद्र नहीं जानी । मैं तुम्हें संसार का मुकुट-मणि बनाने आई थी । आदर, प्रतिष्ठा, मान, यश, धन, वैभव आदि सभी तुम्हारे पैर चूमते । पर तुमने उनपर ध्यान नहीं दिया । तुमने मुझे स्वीकार करके अस्वीकार कर दिया । तुमने मुझे पाकर खो दिया । अब मैं जाती हूँ और मेरे बार-बार बुलाते रहने पर भी वह चली गई । फिर उसने मुड़कर भी नहीं देखा । मुझे उसके जाने के बाद मालूम हुआ कि मेरे शरीर में प्राण सूखते जा रहे हैं । आशा और उल्लास, उमंग और आनन्द सब न जाने कहाँ समा गए । (सिर गिरा देता है ।)

आगन्तुक—यह स्वाभाविक है, स्वाभाविक है ।

कंदी—तुम इसे स्वाभाविक कहते हो ? मेरा मरना क्या स्वाभाविक है ?

आगन्तुक—हाँ ।

कंदी—(क्रोध से) क्या तुम यही सहायता देने आए थे ? चले जाओ यहाँ से । वह तो चली गई, चकमा देकर चली गई ।

आगन्तुक—उसी ने तो तुम्हें यह दृश्य दिखाया था । खैर, अब घबराओ मत । यह स्वाभाविक है । मैं तुम्हें निश्चय रूप से शान्ति दूँगा । अब मैं तुम्हारा साथ दूँगा । और जब तक तुम इस शरीर को छोड़ नहीं देते तब तक मैं तुम्हारा साथी हूँ । तुम समझे वह कौन थी ?

कंदी—हाँ, उस समय तो नहीं, अब समझ में आया कि वह मेरी 'जवानी' थी ।

आगन्तुक—और दूसरी ?

कंदी—स्मृति ।

आगन्तुक—और मैं ?

कंदी—तुम मेरे विचारक हो । अब मुझे तुम्हारा ही सहारा है भाई मुझे नींद आ रही है ।

आगन्तुक—हाँ, तुम सो जाओ, मैं तुम्हें थपकता हूँ । लो सो जाओ ।

[अंधकार हो जाता है पर्दा गिरता है ।]





धूम-शिखा

पात्र

मन्दाकिनी

साधना

त्रिपित बाबू

आगन्तुक

[१६ × १४ का साफ-सुथरा बड़ा कमरा । दक्षिण की दीवार के किनारे एक पलंग बिछा है । जिसके पैर पूर्व को और सिरहाना पश्चिम को है । पलंग के साथ दीवार में किताबों की अलमारी है । पश्चिम की तरफ भी एक अलमारी में कुछ दवा की शीशियाँ हैं । पलंग से कुछ दूर हटकर पूर्वाभिमुख सोफा-सेट एक फटे कालीन पर रखा है । बीच में छोटी मेज है । पलंग के सहारे भी सिरहाने की तरफ एक मेज पर कुछ दवा की शीशियाँ, थर्मामीटर, एक छोटा गिलास, एक पिच, कुछ पुड़ियाँ रखी हैं । पलंग के साथ ही एक कुर्सी । पूर्व की दीवार के बीच में दूसरे कमरे में जाने का दरवाजा है, जिस पर हरा पर्दा पड़ा है । दक्षिण की किताबों की अलमारी के ऊपर दो चित्र हैं—एक पुरुष का और दूसरा स्त्री का । देखने से ज्ञात होता है, मकान किसी साधारण मध्य-गृहस्थ का है । मन्दाकिनी पलंग पर लट्ठे की सफेद चादर ओढ़े सीधी लेटी है । उसकी उम्र लगभग २६ वर्ष है । छरहरे बदन की लम्बी स्त्री । गोरा पीतिमा लिए हुए रंग । नख-शिख से सुन्दर, परन्तु बीमारी के कारण कुछ दुर्बल । उलभे खिचड़ी बाल । बड़ी-बड़ी आँखों में किसी अतीत की घटना की छाया । इस कारण सब कुछ देखती हुई भी, मालूम होता है, ध्यान और नेत्र-चित्र किसी ओर तरफ है । मन्दाकिनी के सिरहाने के साथ एक बहुत छोटे बालक का चित्र है, वह उसे देखती है । वह बार-बार उसे देखती रहती है, फिर उलटकर रख देती है । कभी पैरों की तरफ फेंक देती है । फिर उठाकर देखने लगती है । फिर फेंक देती है । इस तरह कार्ड-साइज उस चित्र की आकृति बहुत-कुछ बिगड़ भी गई है । फिर भी बालक का चित्र इतना बिगड़ा नहीं है । उसका यही काम है, चित्र देखना, कुछ बड़बड़ाना और पटक देना । कभी बैठ जाती है, कभी उत्तर की ओर शून्य दृष्टि से दर्शकों की ओर देखने लगती है । मन्दाकिनी पागल नहीं है, किन्तु कभी-कभी उसकी चेष्टा दर्शकों के हृदय में भ्रम उत्पन्न कर देती है । फिर सावधान होकर आलमारी से कोई किताब निकालकर उसके दो-एक

पृष्ठ उलट-पलटकर पढ़ती है, फिर रख देती है। कभी तक्रिए के सहारे बँठकर बालों पर हाथ फेरती है। अपनी कलाइयों, उनकी सुनहरी चूड़ियों को देखती है, फिर गुम-सुम। फिर चित्र उठाकर देखने लगती है और उठाकर इतने जोर से फेंक देती है कि वह पूर्व की तरफ दीवार से जाकर टकराता है। इसी समय कुछ दूर ग्रामोफोन का एक रिकार्ड बज उठता है। मन्दाकिनी तन्मय होकर सुनने लगती है, फिर एकदम 'नहीं, नहीं' कहकर कान बन्द कर लेती है। आँखें मींच लेती है। रिकार्ड प्रेम-भरे गीत का है।]

मन्दाकिनी—(अपने-आप) यह हृदय का गीत नहीं है। (खाँसना) मैंने कल्पना के पंखों पर उड़कर जीवन के ताजमहल का चित्र बनाया, प्राणों का विश्वास होमकर (खाँसना) जीवन की सुरभि-भीनी उषा में हृदय-मन्दिर की लालसादेवी की प्रतिष्ठा की, (रुककर) हारिल पक्षी की तरह अनन्त आशा के व्योम में उड़ी; किन्तु... किन्तु मेघों में चमचमाती विद्युत की तरह मेरा उल्लास, मेरी कामनाएँ, मेरे जीवन के स्वप्न लुप्त हो गए। (चुप्पी) आज मेरी साँसें मेरी दीनता, मेरी कमजोरी की कहानी कहने को बार-बार निकलती हैं, (खाँसना) उठती हैं और वहीं किसी कोने में लीन हो जाती है। सूखी सरिता की रेत का एक-एक कण साधना के आलोक का सहारा पाकर कभी-कभी चमक उठता है। फिर वही रेत, जड़, निर्जीव रेत का कण। तुम्हें मैंने हृदय का सर्वस्व देकर, कल्पना, सत्य, सौन्दर्य, लालसा का आसव पिलाकर पाला था; किन्तु... किन्तु निष्ठुर, तुमने कमलिनी को ठुकरा दिया, पीस दिया, मसल डाला। ओह, जीवन भार हो गया है ! (खाँसना) तप्तांगार की तरह मेरी अभिलापाएँ जल उठी है, नहीं, नहीं, भस्म हो गई है ! अब क्या शेष है—मरे हुए भंसे के शरीर से कीड़ों के कुलबुलाने की तरह कुछ साँसों का आना और जाना ! (चुप) शेष रात्रि के तारक दल की तरह धीरे-धीरे, पल-पल, क्षण-क्षण निष्प्रभ होते जाना। क्यों न इसी में जीवन का सुख मान लूँ। मैं सुखी हूँ। (खाँसना) अटक-अटककर प्राण निकल रहे हैं। तटों से टकराती सरिता बह रही है, इसीसे साँसें सदा को बाहर जाने के लिए बाहर निकलकर फिर भीतर चली जाती हैं, जैसे वे निकल कर भागने का मार्ग ढूँढ़ रही हों। यह भी सुख है। (खाँसना) साधना, दवा

दे जा, बहन ! (नेपथ्य से—आई जीजी, अभी आई) मैं जीना चाहती हूँ री । यह गीत बन्द ही नहीं होता । कान फाड़े दे रहा है । न-जाने कैसे मूर्ख है लोग । जबरदस्ती लोगों के कानों में बिना चाहे रस भर देना चाहते हैं । (लेट जाती है ।)

साधना—रामू ने दवा लाने में देर कर दी । उसी की प्रतीक्षा करती रही । (दवा देती है) कैसा जी है ?

मन्दाकिनी—(चुप रहकर) लोग व्यर्थ कहते हैं कि तिमिर में आनन्द नहीं होता । तिमिर का फैलाव ही उसका सुख है । (चित्र देखती है) चित्र भी तो जीवन का संकेत देता है, साधना !

साधना—(पास जाकर) क्या कह रही हो, कुछ समझ में नहीं आता । डाक्टर ने कहला भेजा है कि कल से इंजेक्शन लगा देंगे ।

मन्दाकिनी—(चित्र की ओर देखती हुई) कौन कह सकता है, चित्र का जीवन एकांकी नाटक की तरह अपने ध्येय के प्रति तीव्र नहीं होता, साधना ! (फिर रिकार्ड बज उठता है) नहीं, नहीं, यह मेरे हृदय का गीत नहीं है । मेरे श्वासों की धूम-शिखा है । मैं नहीं सुनना चाहती, नहीं सुनना चाहती । (तकिए से कान बन्द कर लेती है । रिकार्ड बजना बन्द हो जाता है । वह उठकर बैठ जाती है और सामने की तस्वीर देखने लगती है ।)

साधना—जीजी, कैसा जी है ? यह तुम्हारा पत्र है । भीतर कानिस्त पर रखा हुआ था । अचानक मेरी निगाह पड़ गई ।

मन्दाकिनी—पत्र, कैसा पत्र ! मैंने पिछले एक वर्ष से पत्र पढ़ना-लिखना बन्द कर दिया है साधना ! फेंक दो इसे । (खाँसती है ।)

साधना—फेंक दूँ, न-जाने कैसा पत्र है । क्या लिखा है । देख लो न एक बार । शायद किसी काम का हो ।

मन्दाकिनी—मुझे मालूम है, यह किसका पत्र होगा । अच्छा लाओ, देखूँ । (मन्दाकिनी पत्र लेकर पढ़ने लगती है । पढ़ती रहती है । मुखाकृति पर कभी हर्ष, कभी शोक, कभी विषाद, कभी आश्चर्य छा जाता है । दस-पन्ध्र सेकिण्ड तक यही अवस्था रहती है । फिर पत्र उठाकर एक तरफ फेंक देती है । गुम-सुम

हो जाती है। फिर सामने के चित्रों की ओर देखने लगती है।)

साधना—कैसा पत्र है ? तुम तो एकदम गुम-सुम हो गई। (मन्दाकिनी को चुप देख, फिर थोड़ी देर बाद) कैसा पत्र है, जीजी ?

मन्दाकिनी—(पत्र पर निगाह जमाए हुए) स्वर्ग-स्वप्नों का निमन्त्रण है, साधना, प्रलय से छिन्न-भिन्न-प्लावित-भूमि पर प्रासादनिर्माण करने का आवाहन है ! (खाँसना)

साधना—(कुछ देर चुप रहकर) क्या कहा, स्वर्ग-स्वप्नों का निमन्त्रण ! और क्या चाहिए। मनुष्य को इससे अधिक और क्या चाहिए ? तुम पिछले एक वर्ष से रुग्ण हो, मध्याह्न में ही तुमने सन्ध्या को निमन्त्रण दे डाला है जीजी, यह क्या कोई अच्छी बात है ? जीवन को आग में लपेट कर हँसना तो जीवन की कला नहीं है। मैं भी तो सुनूँ, क्या लिखा है पत्र में।

मन्दाकिनी—(ध्यान में) वह लिखा है, जो अब नहीं हो सकता, जो लौट नहीं सकता। नहीं, अब नहीं। (लेटकर) वह आना चाहता है, एक बार मिलना चाहता है। किन्तु (तेजी से) इस कंकाल में अब क्या है ? नहीं, मेरी आत्मा विषाद का काला विष पीकर सो गई है। अब उसमें हास नहीं है, उल्लास नहीं है, मैं पतझड़ हूँ, साधना ! (तीव्रता) यहाँ मधुमास नहीं आ सकता। नहीं, अब नहीं। (खाँसना)

साधना—(मन्दाकिनी के बालों में हाथ फेरती हुई) जीजी, बहुत मत बोलो।

मन्दाकिनी—तुम जाओ साधना, आज ही रात की गाड़ी से चली जाओ : तुम कहाँ तक मेरा साथ दे सकोगी ? मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दो। (खाँसती है और करवट बदल कर लेट जाती है।)

[दरवाजा खटखटाने की आवाज]

साधना—कौन ? अन्दर चले आइए। (बिखरे बाल, अपरूप-मुखाकृति, अस्तव्यस्त वेश में एक व्यक्ति आता है। उसके रूप को देखकर ज्ञात होता है, वह कभी सुन्दर रहा होगा। वयस ३५ वर्ष।) कहिए ?

आगन्तुक—(थूक के घूँट निगलता-सा) यह...यह मैं कहता हूँ...
(हाथ जोड़कर) नमस्ते ?

साधना—(खड़ी होकर उसका रूप देखती है) आप किसको चाहते हैं ?
नमस्ते ।

आगन्तुक—(चारपाई पर मन्दाकिनी को देखकर) मैं मन्दाकिनी देवी से
मिलना चाहता हूँ । क्या यही हैं ? सुना है, वे बीमार हैं ।

साधना—जी हाँ वे बीमार हैं । (थोड़ी देर दोनों चुपचाप खड़े रहते हैं)
बैठ जाइए ।

आगन्तुक—(थोड़ी देर बैठा रहकर) सो रही हैं ।

साधना—कमजोरी है । आपको क्या काम है इनसे ? (आगन्तुक ध्यान-
मग्न सा बैठा रहता है । साधना उधर जाकर, जिधर मन्दाकिनी लेटी है)—
जीजी, देखो ।

आगन्तुक—सोने दीजिए । मैं बैठा हूँ । इनको यह कष्ट कब से है ?

साधना—पिछले एक वर्ष से । अब तो...

[मन्दाकिनी करवट बदलकर आगन्तुक को देखती हैं । उसके चेहरे पर
कोई भी भावोदय नहीं होता—न हर्ष, न विषाद, न उपेक्षा, न घृणा ।]

आगन्तुक—(पास की कुर्सी के पास झुकने के लिए आगे बढ़ता है, फिर
सहमकर पीछे हट जाता है, फिर गले का घूँट निगलने का प्रयत्न करता है)—
मन्दाकिनी, (जोर से) मन्दाकिनी दे...!

साधना—धीरे बोलिए, महाशय, जीजी !

[आगन्तुक फिर चुप हो जाता है ।]

मन्दाकिनी—क्या है ?

आगन्तुक—मन्दाकिनी, कैसी हो ?

मन्दाकिनी—जैसी तुम चाहते थे । जरा तुम मेरे हाथ दबाओ साधना !

आगन्तुक—लाओ, मैं दबाता हूँ । (आगे बढ़ता है ।)

मन्दाकिनी—तुम्ही दबाओ साधना !

[आगन्तुक मन्दाकिनी द्वारा पढ़ा हुआ पत्र नीचे पड़ा देख कर उठा लेता है और उसे पढ़ने लगता है। साधना को उसकी यह चेष्टा अच्छी नहीं लगती।]

साधना—ज्ञात होता है, वेश की अस्तव्यस्तता से बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है।

आगन्तुक—यह मेरा ही लिखा हुआ पत्र है। मन्दाकिनी... (मन्दाकिनी आगन्तुक की तरफ देखती है परन्तु शून्य दृष्टि से।) मैं पिछले एक वर्ष से बराबर सोचता रहा हूँ। जितना ही मैं सोचता हूँ, उतना ही मेरा तुम्हारे प्रति आकर्षण प्रबल होता जाता है। मैं मानता हूँ, मैंने पाप किया है, किन्तु पाप का क्या कोई प्रायश्चित्त नहीं है? परन्तु इसमें मेरा उतना अपराध नहीं है, मन्दाकिनी! मैं विवश था, पराधीन था, मुझे मजबूर कर दिया गया।

[मन्दाकिनी स्त्री के चित्र की ओर देखती है।]

—तुम मेरे प्रश्न का उत्तर चित्र से पूछना चाहती हो? मैं स्वयं ही सब कुछ स्पष्ट कर देने के लिए उद्यत होकर आया हूँ। मैं इस अवस्था में नहीं रह सकता। मुझे यह भार असह्य हो गया है। (तीव्रता) जीवन असह्य हो गया है। मैं इसका अन्त कर देना चाहता हूँ। तुम मेरी ओर देखो। उस मनुष्य की ओर देखो, जिसने अपने जीवन में कभी मैला, सूती कपड़ा नहीं पहना, जिसने कार से नीचे कभी सड़क पर पैर नहीं रखा, जिसने कभी कोई काम अपने हाथ से नहीं किया; जिसने...

मन्दाकिनी—(उठकर) मेरी तबीयत ठीक नहीं है, विपिन बाबू।

आगन्तुक—(उसी आवेश में) मैं जानता हूँ, मैं इसीलिए आया हूँ। मेरी भी तबीयत ठीक नहीं है, मन्दाकिनी! मैं भी जीवन से ऊब गया हूँ। फिर भी मरने से पूर्व मैं एक बार सब कुछ कह डालना चाहता हूँ, सब कुछ।

साधना—आपकी तबीयत ठीक न होने का यह आशय तो नहीं कि दूसरे की तबीयत खराब कर दी जाय।

आगन्तुक—मैं जानता हूँ, मन्दाकिनी को क्या रोग है। हम दोनों एक ही

रोग के रोगी है। मैंने निश्चय किया है कि यहाँ से निराश लौटने पर मैं...। यही मेरा निश्चय है।

मन्दाकिनी—(उठकर) क्या आत्महत्या कर लोगे ? कर लो आत्म-हत्या ! एक का नहीं, दो-दो प्राणियों का जीवन नष्ट करके आज आत्महत्या पर उतारू हुए हो विपिनबाबू, लज्जा नहीं आती आपको। न मैं कुछ सुनना चाहती हूँ न मुझे कुछ कहना है। मैं अपनी घुटन में ही घुटकर मर जाना चाहती हूँ। मैं जैसी हूँ मुझे वैसी ही रहने दो। (लेट जाती है)

आगन्तुक—तुम भूलती हो। मनुष्य का जीवन इसलिए नहीं कि वह आशा की किरण पाकर अन्धेरे में पड़ा उसका सुखोपभोग न करे।

साधना—तुम लेटी रहो, जीजी ! उठना मत। मैं अभी आई। (जाने लगती है)

मन्दाकिनी—नहीं, साधना, तुम बैठो। (खाँसती है, खाँसते-खाँसते दम उखड़ जाता है। विपिन उठकर पीठपर हाथ फेरता है। बाँए हाथ में थूकने की चिलमची लेकर मन्दाकिनी को थूकने देता है। फिर रख देता है) तुम लोग बैठ जाओ, बैठ जाओ।

साधना—भयानक कष्ट है।

आगन्तुक—खाँसते-खाँसते आँतें ऊपर को आ जाती हैं। किस डाक्टर का इलाज हो रहा है ? मैं इन्हें पहाड़ पर ले जाने आया हूँ। वहाँ इनकी तबीयत ठीक हो जायगी।

साधना—वही रजनी भट्टाचार्य का तो। डाक्टर भी कहता है भुआली चली जाओ, दो तीन महीनों में ठीक हो जाओगी।

आगन्तुक—फिर ?

साधना—जाती ही नहीं। मैं तो बहुत कहती हूँ। कुछ...

आगन्तुक—(चुप रहकर सोचने लगता है।) मुझे आज्ञा दो, तो मैं तुम्हारी सेवा के लिए चल सकता हूँ मन्दाकिनी ! मुझे इतना ही सहारा दो। मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं तुम्हें ले चलूँगा। (खाट के सिरहाने बैठता है।)

मन्दाकिनी—नहीं, नहीं, मैं नहीं जा सकती।

साधना—जीजी, विपिनबाबू का प्रस्ताव अनुचित नहीं है, जीवन सुख के लिए है, अपने-आप बनाए कष्ट भोगने के लिए नहीं है।

[मन्दाकिनी चुप रहती है]

आगन्तुक—मैं जानता हूँ, तुम्हारी बीमारी क्या है, मन्दाकिनी ! यह केवल मेरी सेवा से ही ठीक हो सकती है। तुम मुझे अवसर दो, जिससे मेरी दग्ध आत्मा को शांति मिले। मैं जल रहा हूँ, मन्दाकिनी मैं हृदय की खुजली से परेशान हूँ। जितनी ही जलन बुझाने के लिए खुजलाता हूँ उतनी ही यह बढ़ती जाती है

मन्दाकिनी—मेरी बहन का चित्र अभी तक मेरे सामने है। उसका भोला मुख अब भी मुझसे तुम्हारी कृतघ्नता की कहानी कह रहा है। तुम्हीं ने उसे मर जाने दिया। तुम्हीं ने उस निरपराध बालिका को फुसला कर उसका सब कुछ नष्ट कर दिया। (रुककर) तुम्हीं ने उसे मार डाला। (खाँसना) अब मेरे पास आए हो, मेरे पास ! मैं जीवन के किनारे पर मरण-सागर की लहरें गिन रही हूँ। मैं बहुत दूर निकल आई हूँ, विपिनबाबू ! नहीं, अब नहीं। एक दिन मैंने तुम्हें अपना सब-कुछ दे डाला था। किन्तु तुमको उतने से संतोष नहीं हुआ। तुमने मेरा निरादर करके, मेरा अपमान करके मुझे ठुकराकर मेरी बहन को पाने का यत्न किया। (खाँसना) उसे फुसलाकर अपना लिया, मैं देखती रही। मेरा प्राण रोता रहा और तुमने हँसकर उसे आलिंगनपाश में बाँधकर मेरा सर्वनाश कर डाला। (खाँसती है।)

साधना—बहुत मत बोलो, जीजी !

मन्दाकिनी—(उठकर) उसकी मृत्यु के बाद तुमने मेरी तरफ भाँका, मुझे अपनाने को घर के चक्कर लगाने शुरू किए, पत्र डाले, अनुनय-विनय की और आज तुम फिर मुझ अभागी से मिलने आए हो ! (खाँसना) नहीं, साधना, आज मुझे सब कुछ कह लेने दो। वर्षों का गुबार मेरे हृदय में भरा हुआ है, मुझे निकाल लेने दो। प्राणों की एक-एक कड़ी में अटका हुआ तिव्रता, कटुता का विष बाहर उगल देने दो।

आगन्तुक—मैं भी सुनने आया हूँ। एक ही दिशा में बहने वाली दो नदियों की धाराएँ कुहरे से पूर्ण है। वे एक दूसरे को नहीं देख पातीं। उनका भ्रम

अविश्वास का कुहरा घट जाने दो, साधना ! मेरा विश्वास है, मैं मन्दाकिनी को प्रसन्न कर सकूँगा, उसके रोग को दूर कर सकूँगा ।

साधना—मैं केवल यही चाहती हूँ कि तुम दोनों फिर विश्वास, दृढ़ता के साथ एक-दूसरे को पहचानो । जीजी, विपिन बाबू... मैं क्या कहूँ ?

आगन्तुक—हम दोनों धीरे-धीरे स्वर्ग की सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे । रजनी-गंधा की भीनी सुरभि से आप्यायित हम दोनों की प्राण-सुषमा मस्त होकर भूम उठी थी...

मन्दाकिनी—कि इसी बीच उनमें से एक यात्री मालती की सुरभि में मस्त होकर ठिठक गया । उसने माथी को सीढ़ियों में नीचे धकेल नवीन लता का आलिगन करके उसके साथ, नवीन उपा के साथ, फिर (खाँसना) यात्रा प्रारम्भ कर दी । वह भूल गया, उसमें प्रेम नहीं, वासना थी; हृदय नहीं, दुर्बलता की धडकन थी; वास्तविकता नहीं, उसका आभास था । उसका स्वर्ग स्वार्थ था, उसका सौन्दर्य वासनाजन्य था, उसकी आत्मा का शिव मिथ्या से अभिभूत था । वह प्रपंच था, (तीव्रता से) लल था, प्रवंचना थी, मिथ्यात्व था, अवास्तविक, धूमायित, स्वात्म-प्रतारक था । वह... वह... (लेट जाती है तथा बहन के चित्र की तरफ देखने लगती है) तू ही बता, क्या मैं भूठ कह रही हूँ ?

आगन्तुक—(खाट से उठ कर कुर्सी पर बैठता हुआ) इसमें कुछ भी असत्य नहीं है मन्दाकिनी, काश तुम अपनी बहन के हृदय को पहचान सकती । उन्होंने मुझसे धीरे-धीरे कहना शुरू किया, बहन एक और व्यक्ति से प्रेम करने लगी है । उन्होंने कई बार कहा कि तुम उन्हें अच्छे नहीं लगते, तुम्हारी आदतों में बहुत बुरी एक आदत यह है कि तुम अनुचित प्रशंसा करते हो, भूठ बोलते हो । मुझे पहले इन बातों पर विश्वास नहीं हुआ । मैं उस दिन सायंकाल तुम्हारे पास आया, तो तुमने कहा—तुम्हें इस तरह नहीं आना चाहिए, तुम देख नहीं रहे कि मैं किसी सज्जन से बातें कर रही हूँ और तुमने मुझे न बैठने को कहा, न प्रतीक्षा करने को ही । मैं बाहर निकला, उस समय तुम्हारी बहन ने कहा, देखलो, जो मैंने कहा, क्या भूठ है ?

मन्दाकिनी—हाँ, भूठ है, सब भूठ है । उसी ने सेभ कहमा—विपिन बाबू

कहते हैं कि मन्दाकिनी मेरी दासी है, मैं उसे चाहे जैसे घुमा सकता हूँ। 'दासी' शब्द मुझे बहुत अखरा। मैं किसी को अपना पति मान सकती हूँ, उसकी दासी नहीं बन सकती। इसके साथ ही तुम मेरे कमरे में आ गए और मेरे मुँह से वे शब्द निकल गए। इसके बाद वहन ने कहा—विपिन बाबू तुम्हें असभ्य, गँवार कह कर गए हैं। मेरे आत्माभिमान को ठेस लगी। मैंने इसके बाद एक सप्ताह तक न तुम्हें बुलाया, न तुमसे मिली। तुम्हीं बताओ, इसमें मेरा क्या दोष है ? (खाँसती है)

आगन्तुक—यह बात सर्वथा मिथ्या है कि मैंने तुम्हारे प्रति अपशब्द कहे। हाँ, कमला को दिए तुम्हारे संदेश ने मेरे हृदय को आघात अवश्य पहुँचाया। फिर भी मैं प्रति दिन जाता रहा, तब कमला ने कहा—वहन तुमसे मिलना नहीं चाहतीं। तुम्ही मूर्ख हो जो उनके पीछे पड़े हो। फिर भी मैंने सुना अनसुना कर दिया। किन्तु तुम से भेंट नहीं हो सकी।

मन्दाकिनी—(उठकर) उन दिनों कालेज में पारितोषिक-वितरण की इन्चार्ज होने के नाते मुझे रात के आठ-आठ बजे तक कालेज में रहना होता था। जब मैं घर आकर कमला से तुम्हारे आने के सम्बन्ध में पूछती, तो उत्तर मिलता—विपिन बाबू कहते हैं कि मैं ऐसी हजार स्त्रियों से विवाह कर सकता हूँ। (खाँसना) मुझे दुख हुआ। पारितोषिक-वितरणोत्सव के बाद मैं एक दिन तुम्हारे घर जाने को तैयार हुई तो कमला ने मुझे झिड़क दिया और कहा जीजी, एक तुम्हीं हो जो निन्दा करनेवाले के घर की खाक छानती फिरती हो। मैं उसकी बातें सुनकर आग-बबूला हो गई। फिर जो मेरे मन में आया, मैं बकती रही। क्रोध और गुस्से के मारे उस रात खाना भी नहीं खाया। रात-भर कमरे में घूमती रही। एक बार मेरे जी में आया कि तुमसे प्रत्यक्ष मिलकर बातें करूँ। दूसरे दिन रात को दृढ़ निश्चय करके जब घर से निकली, तो तुम घर पर नहीं मिले। मैं एक सखी के साथ बाग की तरफ निकल गई। वहाँ मैंने देखा, तुम एक स्त्री के साथ बैठे बातें कर रहे हो। पहले इच्छा हुई कि मैं तुमसे मिलूँ, किन्तु न जाने क्या सोचकर मैं सखी के साथ लौट आई। क्या तुम बता सकते हो, वह कौन थी ? (खाँसना)

आगन्तुक—वह कमला थी। जब मेरे हृदय मैं तुम्हारी विरक्ति भरती जा रही थी, उस समय मैं बिलकुल पागल हो रहा था। मैं तुम्हारे घर जाता तो कमला तुम्हारे द्वारा कहे हुए दो-एक दुर्वचन सुना देती। उस दिन वह स्वयं मेरे घर आई और उसने मुझसे सैर के लिए चलने का आग्रह किया। मैं व्यामूढ़-सा उसके साथ चल दिया। तुमने देखा होगा, मैं बिलकुल मूक था, वही कभी-कभी बोलती थी।

मन्दाकिनी—मैंने दोनों को चुपचाप ही देखा। मुझे बड़ा धोखा हुआ विपिन बाबू ! भ्रमण से लौटने के बाद मैं पागल-सी हो गई। मैंने एकान्त में जाकर अपना सिर पीट डाला। तुम्हें अपशब्द कहे। सर्दी के दिनों में भी मेरा शरीर पसीने से तर हो रहा था। मैं छत पर घूमने लगी, (खाँसना) बराबर घूमती रही।

साधना—वस, अब चुप हो जाओ। विपिन बाबू, जीजी की तबियत और भी खराब हो जाएगी। अच्छा तो यह है कि...

आगन्तुक—भ्रम का फैलाव आकाश-बेल के समान है, जिसकी जड़ नहीं होती। जैसे-जैसे भ्रान्ति फैलती है, विश्वास का वृक्ष, जिस पर वह फैलती है, सूखने लगता है।

मन्दाकिनी—विश्वास नहीं होता, मेरी ही वहन मुझे धोखा देगी। यदि तुम्हारे हृदय में वास्तविक प्रेम होता, मेरे प्रति ममता होती, तो कमला भी तुम्हें धोखा नहीं दे सकती थी विपिन बाबू ! उस समय मेरे हृदय में जो हाहाकार मचा, जो उत्क्रान्ति कर देने वाला हड़कम्प उठा, तूफान के जो भोंके उठे, वे मेरा प्राण लेने को काफी थे। उस समय भी मैं नहीं मरी; (खाँसने लगती हूँ) उस समय शंकर के तीसरे नेत्र ने मुझे भस्म नहीं किया, जब मैंने देखा मेरी ही वहन मेरे प्राणों से खिलवाड़ करती हुई विलास कर रही है। उस दिन रात को तुम दोनों ने आर्य-समाज-मन्दिर में जाकर विवाह भी कर लिया, तब तो... (सिसक-सिसक कर रोने लगती हूँ)।

साधना—शान्त हो, जीजी !

आगन्तुक—उसी का मुझे दुख है मन्दाकिनी। मैं इतना विमूढ़ क्यों हो

गया था ? क्यों मैंने एक बार तुमसे मिलने की चेष्टा नहीं की ? किन्तु मेरे यौवन ने मुझे अन्धा बना दिया था । मेरे अभिमान ने मुझे तर्कहीन, हृदयहीन, ज्ञानहीन, विवेकहीन कर डाला था । मुझे उसी समय विष खाकर मर जाना चाहिए था । हाय, मैंने क्यों जीवन धारण किया ! मुझे नारकी को यह दिन देखने से पूर्व...। यही मेरा सचमुच का अपराध था । मन्दाकिनी, मैं सभी कुछ भोगने को तैयार हूँ । तुम मुझे दण्ड दो । तुम मुझे विष दो, मैं पी लूँगा । किन्तु मैं विवश था । मुझे समझाया गया कि मन्दाकिनी मेरी शक्ल नहीं देखना चाहती । उनकी दृष्टि में मनुष्य ही नहीं, मैं पशु से भी गया-बीता हूँ । फिर किस बूते पर मैं तुमसे मिलता ? इसीलिए मैंने आर्य-समाज-मन्दिर में जा कर कमला से विवाह कर लिया ।

मन्दाकिनी—उसके बाद कमला मुझे दिखाई नहीं दी । उस दिन जब मुझे ज्ञात हुआ कि कमला अस्पताल में भयानक रूप से बीमार है, उसके बचने की कोई आशा नहीं है, तभी मेरा गर्व विगलित हुआ और मैं अस्पताल गई । वहाँ जाकर देखा, संज्ञाहीन कमला विस्तर पर पड़ी है; यह चित्र (बालक का) उसके सिरहाने रखा हुआ था । (खाँसना) मैं बहुत देर तक डाक्टरों की प्रतीक्षा करती बैठी रही । नर्स चुप थी । उन्होंने बताया अवस्था अच्छी नहीं है । मैं रात-भर बैठी रही । जब तुम आए , तब मैं छिप गई ।

आगन्तुक—क्यों ?

मन्दाकिनी—(थोड़ी देर चुप रह कर) क्योंकि मैं तुमसे घृणा करती थी । और तुम्हें निरन्तर वहाँ बैठा देखकर उलटे पाँव लौट आई । घर आकर मैं रात-भर रोती रही । सबरे फिर गई किन्तु उस समय उसको वहाँ से हटा दिया गया था—वह मर चुकी थी । मैं अपनी एक सखी के साथ श्मशान गई और दूर से उसकी चिता को नमस्कार करके चली आई ।

आगन्तुक—मैंने श्मशान में तुम्हें देखा था ।

मन्दाकिनी—फिर भी तुम मुझसे नहीं मिले ?

आगन्तुक—वही तो, वही तो मुझे दुख है कि उस समय मैं तुमसे क्यों नहीं मिला । किन्तु मैं उस समय इतना दुःखाभिभूत था कि मेरा विवेक ध्वस्त हो

गया । मैंने समझा तुम केवल अपनी बहन को देखने आई हो, अन्तिम बार उसकी चिता का दर्शन करने आई हो । यही सोचकर मैं तुमसे नहीं मिला ।

मन्दाकिनी—जाने दो उन बातों को, विपिन बाबू !

आगन्तुक—उसके बाद जब मैंने तुम्हारी सखी इला से सारा वृत्तान्त सुना, तभी से मेरा मन तुम से मिलने को आतुर हो उठा । अब मैं चाहता हूँ, तुम भुआली चलकर रहो और मुझे प्रायश्चित्त-स्वरूप अपनी सेवा करने दो । नहीं तो मेरी आत्मा को इस जीवन में नहीं, जन्मजन्मान्तर में भी शान्ति नहीं मिलेगी । एक बार कह दो तुमने मेरा अपराध क्षमा कर दिया ।

मन्दाकिनी—व्यर्थ है, विपिन बाबू ! क्यों नहीं मेरी बहन साधना से...

साधना—क्या बक रही हो, जीजी !

मन्दाकिनी—विपिन बाबू असंख्य सम्पत्ति के स्वामी हैं साधना ! और मैं कितने दिन की हूँ ?

आगन्तुक—व्यंग्य मत करो मन्दाकिनी ! मैं स्वयं अपने पापों से जल रहा हूँ । क्षमादान करो देवि ! मैं केवल तुम्हें चाहता हूँ । (भुक्त जाता है ।)

मन्दाकिनी—मैं बीमार हूँ । मेरा मौन्दर्य भी नष्ट हो गया है ।

आगन्तुक—काश, मैं तुम्हें अपना हृदय चीर कर दिखा पाता मन्दाकिनी ! क्या तुम मुझे क्षमा न करोगी ? मैं केवल तुम्हें चाहता हूँ प्रिये ! एक बार कहो तुमने मुझे क्षमा कर दिया और मुझे अपनी सेवा का अवसर दो । मेरी सारी सम्पत्ति तुम्हारे चरणों पर न्यौछावर है ।

मन्दाकिनी—मुझे क्षय हो गया है । खाँसी में खून आता है । कभी-कभी रक्त वमन भी होता है । मैं निर्बल हूँ, अमुन्दर हूँ, विपिन !

आगन्तुक—मुझे सब स्वीकार है । मैं तुम्हारी सेवा करूँगा । मैं वासना का भूखा नहीं हूँ मन्दाकिनी मुझे दृष्टिदान दो प्रिये ! मैं अभी तुम्हारी यात्रा का प्रबन्ध करता हूँ । बोलो ।

मन्दाकिनी—मुझे को ढोकर क्या करोगे, विपिन बाबू ! मैं मुर्दा हूँ ।

आगन्तुक—मैं उसे जीवित कर लूँगा मन्दाकिनी, तुम्हारे एक बार 'हाँ' करने-भर की देर है ।

साधना—बहन, विपिन बाबू आदमी नहीं, देवता है।

आगन्तुक—मेरे जीवन पर दया करो। मैं तुम्हें जीवन दूंगा। भरसक सुखी रखूंगा। तुम्हारे सुख में मेरा सुख है, मेरी शान्ति है, बोलो, एक बार कह दो। वस, कहने-भर की देर है। मैं डाक्टर को भी साथ ले चलूंगा मन्दाकिनी !

मन्दाकिनी—मुझे विश्वास नहीं कि मैं अधिक दिन जीऊँगी, विपिन !

आगन्तुक—मुझे विश्वास है, मैं भविष्य के गर्भ में आलोकित सुख-राशि देख रहा हूँ मन्दाकिनी !

[मन्दाकिनी चुप रहती है]

साधना—प्रस्ताव अनुचित नहीं है। डाक्टर कह रहे हैं तुम ठीक हो जाओगी।

आगन्तुक—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है मन्दाकिनी ! रात के नौ बजे गाड़ी जाती है।

मन्दाकिनी—जीवन किस को प्रिय नहीं होता विपिन बाबू, तो...तो...?

आगन्तुक—हाँ, मन्दाकिनी, प्राणवाही संतत स्वर तुम्हें जीवन के स्वर्ग की ओर पुकार रहा है। चलो मैं अभी एम्बुलेंस का प्रबन्ध करता हूँ।

मन्दाकिनी—दोपहर की लू में उड़ते हुए बगूलों में मेरी छाया हँसती देख पड़ रही है। परन्तु...

साधना—मैं स्वयं भुआली तक तुम्हारे साथ चलूँगी जीजी !

मन्दाकिनी—चलूँ, तो क्या चलूँ ? (चुप रहती है) ठहरो, मुझे सोच लेने दो।

आगन्तुक—मेरे हृदय के स्तर-स्तर से विश्वास उठकर कह रहा है कि तुम ठीक हो जाओगी। तुम्हें कोई कष्ट न होगा प्रिये। मैं एम्बुलेंस का प्रबन्ध करने जाता हूँ। (उड़ने लगता है)

मन्दाकिनी—(ध्यानस्थ-सो होकर) ठहरो ! (चुपचाप बहन के चित्र की ओर देखती रहती है। देखती रहती है। कभी उसके चेहरे पर प्रकाश की मुस्कराहट आलोकित हो उठती दिखाई देती है, फिर धीरे-धीरे विषाद की छाया उठती दिखाई देती है। तीन-चार सैकिण्ड तक सकपके की-सी हालत रहती है, फिर

एकदम उसके चेहरे से दृढ़ता के चिन्ह प्रतिलक्षित होने लगते हैं। फिर जैसे सागर में डूब गई हो, ऐसी तन्मयता हो जाती है। दोनों व्यक्ति सकपके की हालत में साँस साधे उसकी चेष्टा देखते हैं। वह जैसे जाग उठती है।) बहन की आँखों में दया, करुणा की प्रश्नसूचक लहरें उठ रही हैं। मुझे बहन की आँखों में आँसू छलछलाते दिखाई देते हैं। चित्र के हृदय की धड़कन बढ़ रही है, देख नहीं रहे विपिन बाबू ! देख नहीं रहे...

मन्दाकिनी—यह तुम्हारी कल्पना का चित्र है मन्दाकिनी ! जैसे बालकों को अंधेरे में भूत दिखाई देता है निर्जन अन्धकार में कोने में मनुष्य खड़ा दिखाई देता है। तुम स्वस्थ होकर मेरी बात पर विचार करो। मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ। विश्वास करो, प्रिये ! मेरे जीवन की नौका मेरे ही पाप के भँवर में डूबने जा रही है। मेरे विश्वासों की नीवें हिल उठी है, मेरी आस्था मुझे धोखा देने को उद्यत है। मुझे सहारा दो मन्दाकिनी, मुझे अपने पाप का प्रायश्चित्त करने दो। मैं डूब रहा हूँ, मुझे बचाओ।

साधना—शान्त हो, विपिन बाबू !

आगन्तुक—मुझे अवसर दो प्रिये !

मन्दाकिनी—अवसर दूँ ! तुम्हारे जीवन की नौका को पापों के भँवर में डूबने से बचाऊँ ! ठहरो, मुझे सोचने दो।

आगन्तुक—हाँ मन्दाकिनी !

साधना—हाँ जीजी ! विपिन बाबू पर दया करो। इसी में तुम्हारा भी कल्याण है।

मन्दाकिनी—(ध्यानमग्न हो जाती है। जैसे विचारों के गहरे सागर में डूब गई हो; जैसे तर्क-वितर्क, संकल्प-विकल्प, अन्धकार और प्रकाश के दोनों छोर उसे दिखाई दे रहे हों; जैसे एक बाल के हेर-फेर से किनारे की नौका इधर-उधर हो रही हो। वह सोचती है, सोचती ही रहती है। एकदम)—नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं नहीं जाऊँगी। तुम जाओ विपिन बाबू, अब यहाँ कभी मत आना। जाओ। मुझ में दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष की तहों पर उठी हुई जीवन की नीवों पर अब प्रासाद खड़े करने का साहस नहीं

है । कुहेलिका में सोते हुए धूमिल स्वप्नों को उत्तरग होकर तुम्हारे प्रकाश से छिन्न-भिन्न करने की अभिलाषा नहीं है । तिल-तिल करके बढ़ती हुई दावाग्न को एक चूल्हू पानी डालकर बुझाने की आकांक्षा नहीं है । मैं जी-जान से प्राणों की धड़कन को घुटने का तिकत आवाहन दे चुकी हूँ । मुझे जाने दो, मुझे सहने दो यह व्यथा । बहन कमला के लिए, मेरे लिए, अपने लिए मुझे मेरी दशा पर छोड़ दो । जाओ, जाओ-S-S-S ।

[खाट पर गिर पड़ती है, नेपथ्य में भयंकर स्वर गूँज उठता है । विपिन पराजित-सा चुप-चाप उठकर चल देता है । साधना जड़ मूक की तरह देखती रहती है । दूर तक साधना की आवाज गूँजती रहती है—गूँजती रहती है—विपिन बाबू ...!] ११३





मन का रहस्य

पात्र

बूढ़ा प्रौढ़	}	रोगी
रोजी सौसी	}	नर्स
गोवर्धन	:	
डाक्टर	:	
बुढ़िया	:	
लड़का	:	
दामोदरलाल	:	
पत्नी	:	
रामनारायण	:	
लछ्मनदास	:	

समय : शाम के पाँच बजे

[अस्पताल के बड़े कमरे का एक भाग, जिसमें सामने बीमारों की दो खाटें दिखाई दे रही हैं—उनमें एक बूढ़ा और एक प्रौढ़ अवस्था का है। खाट के पास यथावश्यक एक अलमारी, एक स्टूल, कुछ दवाएँ, एक चार्ट—सब रखा है। बूढ़ा आँखें फाड़े छत को देखता दिखाई देता है। उसका शरीर हड्डियों का ढाँचा, पीला है। आँखें बंदी हुई, कांतिहीन; मुख पर चिन्ता, दैन्य, और बीमारी का आक्रमण। बाल बड़े हुए और रूखे होने के कारण मुंह और भी भद्दा लग रहा है। जब देर तक देख नहीं पाता, तब आँखें बन्द हो जाती हैं; फिर खोल लेता है, फिर बन्द हो जाती हैं। उसके पास का बीमार कराहते-कराहते कुछ सो गया था। जागने पर दर्द के मारे फिर चिल्ला उठता है। करवटें बदलता है। चिल्लाहट के मारे बूढ़े को और भी बेचैनी होती है, वह रो पड़ता है। इस समय एक नर्स आकर चिल्लाते रोगी को बिना बोले इन्जेक्शन दे जाती है। फिर जाती हुई कहती है—]

नर्स—सो जाओ, चिल्लाओ मत; और बीमारों को तकलीफ होती है।

प्रौढ़—(नर्स की तरफ फटी-कटी आँखों से देखता रह कर) जब दर्द के मारे चिल्लाता हूँ, तभी इन्जेक्शन। यह भी कोई, 'हत्यारे हैं, हत्यारे।

[नर्स लौटकर देखती है और भुनभुना कर निकल जाती है। उसकी आवाज आती है : 'स्टुपिड'।]

प्रौढ़—कोई सहानुभूति नहीं है। यह दर्द मरने पर ही जायगा। 'हाय... सी-सी'... दर्द हो रहा है। न जाने कहाँ से फट पड़ा। हाय, मरा जा रहा हूँ ! मरा... (दर्द धीरे-धीरे कम होने लगता है, तो वह स्वस्थ दिखाई देने लगता है।) बूढ़े बाबा, इतने बड़े-बड़े मकान क्या मौत के लिए बनाए गये हैं ? (बूढ़ा जो अब तक आसमान ताक रहा था, अपने साथी की ओर चुपचाप देखने लगता है।) मैं कहता हूँ मौत क्या अन्धी है, जो इस वार्ड में से बिना सोचे-समझे कभी

‘किसी को, कभी किसी को उठा ले जाती है। मैं चिल्ला-चिल्ला कर बुलाता हूँ, तब भी नहीं आती।

बूढ़ा—(मरी आवाज से) अभी तुम्हारे पास आने में कुछ देर होगी। तुमसे पहले तो...

प्रौढ़—(चोंक कर) क्या कहा...?

बूढ़ा—कुछ नहीं। (चुप हो जाता है।)

प्रौढ़—क्या अस्पताल में मौत के अलावा भी कुछ सोचने को होता है?

बूढ़ा—जो अच्छे होने को होते हैं, वे मौत से लड़कर लौट जाते हैं।
‘पर...

प्रौढ़—पर...?

बूढ़ा—हम तो यहाँ मरने आए हैं न ? प्राण अटक रहे हैं।

प्रौढ़—क्या किसी ने दरवाजे बन्द कर दिए हैं। दीखता तो नहीं है, जब दर्द होता है तो लगता है आ गई, आ गई। यह जरा-सी मुई...

बूढ़ा—मुई से मौत डरती होगी। (आँखों में चमक, ओठों पर फटी हँसी छा जाती है।)

प्रौढ़—मौत तो क्या, दर्द डरता है। अब चाहता हूँ, जी जाऊँ, तो अच्छा रहे। पर, उम्मीद नहीं है। (बूढ़ा दूसरे रोगी की तरफ देखता रहता है और उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं। बड़बड़ाते हुए) जी चाहता है, तेरी आँखें फोड़ दूँ। कोई किसी का नहीं है। कैसा धोखा दिया राँड ने...‘मैं तुम्हें जी-जान से प्रेम करती हूँ, मेरे प्यारे !’ और सब लूट लिया। मैं भी कैसा अन्धा था। सब सौंप दिया। सब दे दिया। (आँखें चमकने लगती हैं। थोड़ी देर के लिए चुप हो जाता है।)

बूढ़ा—न जाने क्या हुआ ? क्या हुआ होगा। कोई भी तो नहीं आया। आज तीन दिन हो गए। (चुप हो जाता है।)

प्रौढ़—(आँखें खोल कर) अब तू सपने में क्यों आती है ? जा जो कुछ था. सब तो छीन लिया। जा राँड, जा। जा... (आँखें बन्द कर लेता है।)

बूढ़ा—अब मैं बहुत देर नहीं जीऊँगा । न जाने क्या हुआ होगा ?

प्रौढ़—अब मेरे पास कुछ नहीं है : दर्द है, और मौत ! जा !

बूढ़ा—यह हो जाए, तो मैं सुख से मरूँ ।

[नर्स आती है ।]

नर्स—(पास आकर हाथ देखती है । आँखों के पपोंटे खोलती है ।) कैसी तबीयत है बाबा !

बूढ़ा—प्राण... (रो पड़ता है ।)

नर्स—रोते क्यों हो ? जितने दिन जीना है आराम से जियो । (दवा की शीशी उठाकर पिलाती है । टैम्परेचर लेकर चार्ट में लिखती है ।) रो मत, बाबा; रो मत और बीमार हो जाओगे ।

बूढ़ा—(मरी आवाज में) रोता नहीं हूँ ।

नर्स—आवाज बँठ गई है । तुम्हारे घर वाले नहीं आते तुम्हें देखने ! (बूढ़े का सिर ढुलक जाता है । नर्स सिर सीधा करके तकिये पर डाल देती है ।) आज शाम तक, या कल सुबह; बस ।

बूढ़ा—(आँखें फाड़ कर नर्स को जाते देखता है ।) कोई नहीं आया...कोई नहीं । न जाने...न जाने...प्राण अटक रहे हैं । (इधर-उधर ललक कर देखता है । आँखें बन्द कर लेता है । साँस तेजी से चलने लगती है ।)

नर्स—(दूर से आवाज देती है) अरे गोवर्धन, वेड न० ५ का बीमार देर तक नहीं चलेगा । जरा खयाल रखना, हाँ । स्टेचर तैयार रखना । मैं 'टी' के लिए जाती हूँ । सौसी, सौसी, चल न । देर हो रही है । इन्तजार कर रहा होगा डेविड । सेमसन के बिना तू भला क्यों जाने लगी !

सौसी—डेविड तुझे प्यारा है, तो सेमसन मुझे । जलती क्यों है रोजी !

नर्स—मैं भला क्यों जलने लगी, सौसी । न जा । हम दोनों चाहते थे, तू भी होती । उसने बुलाया था ।

सौसी—मैंने अभी कॉफी ली है, तू जा । मैं देर से आऊँगी । डाक्टर आ रहा है । और देख, मार्गरेट की शादी कल है ।

नर्स—होगी ! मुझे क्या ? वह मूँहजली सीधे मुँह बात भी तो नहीं

करती । नखरे दिखाती है नखरे । बड़ा आदमी मिल गया, तो समझती है, बस हो गया । नौकरी छोड़ देगी । मेम बनकर रहेगी ।

सौसी—मुझसे तो कह रही थी—रोजी अपने को न जाने क्या समझती है । जरा सूरत अच्छी है ! नाक नुकीली है ! आँखें तो बिज्जू-जैसी है ।

नर्स—और उसकी सूरत ! छिः ! एकदम कलूटी । रात में चुड़ैल लगती है ।

सौसी—काली तो नहीं है । यह तो तेरा कहना गलत है । हाँ, रंग जरा साँवला है । तेरा तो मुकाबिला ही क्या ।

नर्स—होगा, मुझसे मतलब । तू उसे साँवली कहती है ! एकदम कोयला । चल, जाने दे । किसी कुली की छोकरी है । मेरा खानदान देखा है, एकदम ऊँचा । बाप तहसीलदार थे ।

सौसी—वह कहती है कि उसका बाप रेलवे का ड्राइवर था ।

नर्स—तो ड्राइवर और कुली में फर्क क्या है ? कोयला भोंकनेवाला ही तो ! मैं उसकी शादी में नहीं जाऊँगी । आखिर मैं पूछती हूँ, उसका वुड-वी-हसबैंड है क्या ?

सौसी—आई० ए० एस० का इम्तहान दे रहा है । किसी दिन बड़ा आदमी होगा ।

नर्स—(हँ, मुँह बिचकाकर घृणा से) बड़ा आदमी होगा ! हो चुका बड़ा आदमी ! ऐसी ही सूरत है बड़े आदमियों की ! मैं कहती हूँ, बड़े आदमी यों ही नहीं हो जाया करते ! मेरे डेविड को देखना, एक दिन इसी अस्पताल में बड़ा डाक्टर होगा । आने दे जरा मौका । उसने मुझसे कहा, 'डॉलिंग, अस्पताल का बड़ा डाक्टर होते ही हमारा पहला काम होगा'... 'यूरोप का ट्रिप !' वह थल-थल, फुसफुसी !

गोवर्धन—मेम साहब, उस बूढ़े का हाल खराब हो रहा है, चल कर देखिए न । कहिए तो, लाश-घर में पटक आऊँ ?

नर्स—डाक्टर को बुला ले, वही डिक्लेयर करेगा । मुझे फुर्सत नहीं है । मैं चली । अच्छा सौसी, चली ।

सौसी—अच्छा रोजी ।

[दोनों चली जाती हैं । गोवर्धन के साथ डाक्टर आता है । बूढ़े को देखता है ।]

डाक्टर—बेहोशी है । अभी मरा नहीं है । इसका कोई घरवाला नहीं आया ?

गोवर्धन—देखा तो नहीं हुआ !

डाक्टर—(लापरवाही से इधर-उधर देख कर चलता हुआ) कोई न आए, तो लाश-घर ले जाना, आध घण्टे बाद । क्लर्क को बोलो, चेक-अप करके फार्म पुट-अप कर देगा । मैं जा रहा हूँ, मर जाए, तो रख आना । (सीटी बजाता चला जाता है ।)

गोवर्धन—(बूढ़े से) अबे, मर जल्दी से साले, तेरे लिए खड़ा रहना पड़ेगा । कैसा मनहूस बीमार है ।

[बूढ़ा पड़ा-पड़ा आँखें खोलता है, फिर बन्द कर लेता है ।]

बूढ़ा—(और भी धीमी आवाज में) कोई नहीं... (आँखें बन्द कर लेता है ।)

[इसी समय एक बुढ़िया और पन्द्रह-सोलह साल का लड़का आता है । दोनों आकर बूढ़े को देखने लगते हैं । थोड़ा देर चुप रह कर आँखों में आँसू भर कर लड़का कहता है ।]

लड़का—काका, काका ! (रोता है) काका ?

बुढ़िया—(देह पर हाथ फेरती हुई) सुनते हो । सुनते हो । मैं कह रही हूँ । बोलो तो सही । देखो, लल्लू खड़ा है । (भकभोरती है) अरे सुनो, सुनो तो सही ।

लड़का—काका, काका ! क्या हो गया काका को अम्मा, क्या हो गया ! (रोता है) अम्मा !

बुढ़िया—बेटा, अभी ठीक हो जाएँगे । (आँखों में आँसू, भरे-भरे गले से) सुनते हो, सुनो, तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई । सुनो, लीला का ब्याह हो गया । सुनते हो, सुनो । (बहुत देर चिल्लाने के बाद बूढ़ा आँखें खोल देता है) मैं

कहती हूँ, लीला का ब्याह हो गया। बरात बिदा कर के हम सीधे स्टेशन से आ रहे हैं। अब तुम चिन्ता क्यों करते हो। तुम्हें बहुत चिन्ता थी। भगवान ने तुम्हारी इच्छा पूरी कर दी। अब अच्छे हो जाओ।

लड़का—काका, बड़ा अच्छा ब्याह हो गया। बरात के सब लोग खुश-खुश गये। तीन ज्यौनारें दीं।

बुढ़िया—मिठाइयाँ बनवा लीं थी। बर्फी, गुलाब जामुन, इमरती और लड्डू। बाकी पूरी-कचौरी, तीन शाक, रायता, सोंठ।

लड़का—पर लड्डू तो थोड़े हो गए थे, काका।

[बूढ़ा उत्सुकता से देखता है।]

बुढ़िया—चुप रह। लड्डू बरातियों को पूरे हो गए। उन्होंने खूब खाये। खूब फंके। और मुनो। इक्कीस जोड़े सब मिलाकर कपड़े। तीस बर्तन। एक कुर्सी, एक मेज, एक बड़ा शीशा। लोग कहते थे... खूब दिया। खूब दिया।

लड़का—दामोदरलाल ने अपनी ओर से एक बुढ़िया साड़ी भेजी थी वह अम्मा ने नहीं दी, रख ली।

[बूढ़ा चिन्ता से देखने लगता है।]

बुढ़िया—(धीरे से) मैं कहती हूँ, तू पागल है। मैंने कहाँ रखी !

लड़का—रखी तो है। झूठ बोलती है।

बुढ़िया—(धीरे से) ऐसे नहीं कहा जाता। कह दे, दे दी। नहीं तो भीतर से दुखी होगे। देव नहीं रहा, प्राण अटक रहे हैं। (ऊँची आवाज में) लल्लू को नहीं मालूम था, मैंने वह साड़ी भी दे दी।

लड़का—हाँ, दे दी काका, दे दी। दामोदर बड़े अच्छे आदमी हैं। साड़ी लाये। रुपये दिये।

बुढ़िया—दामोदर का ईश्वर करें भला हो। उसने हमारी लाज रख ली।

[बूढ़ा धीरे-धीरे चेतन हो रहा है। मुँह-ही-मुँह में बड़बड़ाता है, जो सुनाई नहीं देता। दोनों देर तक उसका मुँह चलता देखते रहते हैं।]

लड़का—क्या वह रहे हो काका ! कुछ समझ में नहीं आता। क्या कहते

हैं काका, अम्मा !

बुढ़िया—ठहर, मैं कहती हूँ । (ऊँची आवाज में) सेठ दामोदर ने हमारी बड़ी मदद की । एक हजार दिया । नहीं तो ब्याह थोड़े ही होता । बरात लौट जाती । 'बराती कह रहे थे, सौ सौ के दो टीके होंगे ।' और बोले कि 'पहरावनी में इतना देना पड़ेगा, उतना देना पड़ेगा । यह करना होगा, वह करना होगा ।, हमने सबकी खुशामद की, प्रार्थना की । कहा, 'गरीब आदमी है । बाप अस्पताल में बीमार पड़ा है । कारबार कुछ है नहीं । लड़का अभी छोटा है, कमाई कोई नहीं है कोई आदमी नहीं है । सुन रहे हो ?

[बूढ़ा सुनने का संकेत करता है । बुढ़िया कहती जाती है ।]

बुढ़िया—तब भी बराती नहीं माने । लड़के का बाप नहीं माना । बरात लौटा ले जाने को तैयार हो गए । बिस्तर बँध गए, जैसे जा ही रहे हों । तो मैंने बाहर निकल कर हाथ-पैर जोड़े । पर किसी ने नहीं माना । रोई, पैर छुए, पर कोई नहीं पिघला । किसी ने नहीं सुना ।

लड़का—बोले, नहीं है तो ब्याह मत करो । किसी गरीब का घर देखो । हम ब्याह करने आए हैं भोग माँगने नहीं । ब्याह होगा तो ठीक से होगा । सबकी इज्जत करनी पड़ेगी । बुढ़िया खाना होगा और...

बुढ़िया—ठहर, मैं कहती हूँ । तब फिर मैं रोती-धोती दामोदर के घर गई । उसकी बहू को सब हाल सुनाया । इन्हीं में सेठ आ गया तो बोला, 'मंगली पंडित की बहू है क्या ?' सेठानी बोली 'हाँ, वही है । विचारी बड़ी दुखी है ।' और पास जाकर उसे सब हाल सुनाया, तो सेठ थोड़ी देर में आकर कहने लगा, 'मेरा भी आजकल अच्छा हाल नहीं है वहन । मैं तुम्हें निरास भी नहीं लौटा सकता । यह एक आदमी तीन हजार की धरोहर रख गया है । उसी में से एक हजार ले जा, और अपना काम चला ।' उसने रुपये दे दिए, और उसकी बहू ने लड़की को एक साड़ी देते हुए कहा, 'यह साड़ी, मैंने, बहुत दिन हुए, तेरी छोकरी लीला के ब्याह के लिए ही रखी थी, ले जा । जब से इन्होंने देश-सेवा के साथ सच्चाई का पैसा लेने की प्रतिज्ञा की है, तभी से हम दिन-पर-दिन गिरते जा रहे हैं । ईमानदारी की कमाई ने हमें बरबाद कर दिया ।' तो सेठ

कहने लगा, 'अरी, ऐसा क्यों कहती है। भगवान् चाहेंगे, तो हम ईमानदारी से पैसा कमाएँगे। मन तो प्रसन्न है। सन्तोष तो है। बस यही बहुत है।'

[बूढ़े के मुख पर संतोष, प्रसन्नता, निश्चिन्तता के चिह्न दिखाई देते हैं। वह आँख बन्द कर लेता है। दोनों उसको देखते रहते हैं। इसी समय स्ट्रेचर लेकर दो आदमी आते हैं।]

पहला—हटो-हटो, अब क्या रखा है इसमें !

दूसरा—मुर्दा-घर से लाश ले जाना। हटो, हट जाओ। हट बे छोकरे। हट बुढ़िया। हमें देर हो रही है।

बुढ़िया—क्या है ! क्या कर रहे हो ?

एक—(बूढ़े के शरीर से चादर हटा देते हैं) करते क्या हैं ? मर गया तो लाश ले जा रहे हैं।

लड़का—(रो कर) अम्मा !

बुढ़िया—अरे, अभी तो साँस है बेटा इनमें ?

पहला—देखती नहीं आँखें बन्द हो गई हैं; साँस नहीं चल रही है।

बुढ़िया—अभी तो ये बोल रहे थे।

दूसरा—पर अब कहाँ बोल रहा है, चल, हट।

लड़का—नहीं-नहीं, यह क्या करते हो, अभी काका जिन्दा है।

[लड़का बाप के ऊपर गिर जाता है, वे दोनों झपट कर उसे अलग कर देते हैं। बुढ़िया डकरा कर रोने लगती है। दूसरा बीमार जाग पड़ता है।]

प्रोढ़—क्या है, क्या बात है ?

पहला—कुछ नहीं, ये लोग इस बूढ़े को मरने भी नहीं देते। मर गया, तो भी जिन्दा समझते हैं।

प्रोढ़—तो मर गया... इतनी जल्दी। मेरे एक झपकी लेते ही। क्या इतनी जल्दी मौत आ गई। अच्छा था बूढ़ा बेचारा। अब किसी और को लाओगे इसकी जगह। (हँस कर) हाँ, ले आओ। शायद यहाँ हर बीमार मरने ही को आता है। (हँसता है)

बुढ़िया—बेटा, अभी यह नहीं मरे हैं। अभी नहीं मरे हैं।

पहला—तुझे क्या मालूम, बूढ़ी । तू लोगों का मरना क्या जाने ! हम तो शकल से पहचान लेने हैं ।

[बुढ़िया और लड़का दोनों चिल्लाते हैं, इसी बीच वार्ड का डाक्टर आता है ।]

डाक्टर—क्या है, कैसा शोर है ?

पहला—हज़ूर, रोजी नर्स कह गई थी कि यह बीमार मरने वाला है, खयाल रक्ना । पर्दा डाल कर रिपोर्ट लिखवा देना । सो हज़ूर रिपोर्ट कर के हम उठाने आए हैं ।

डाक्टर—ठहरो । (स्टेथस्कोप निकाल कर छाती, आँखें देखता है) पागल, कौन कहता है यह मर गया ? जाओ । रोजी कहाँ गई ?

एक—हज़ूर चाय पीने ।

डाक्टर—लेकिन, उमकी तो ड्यूटी थी । इस तरह छोड़ कर चली गई ?

प्रौढ़—(हँस कर) यह कोई नई बान नहीं है, डाक्टर साहब, यहाँ तो हर बीमार मरा हुआ ममभा जाता है । गनीमत यह है कि वह जल्दी मुर्दा-घर नहीं ले जाया जाता । फिर यह भी तो मुर्दा-घर ही है ।

डाक्टर—क्या मतलब ?

प्रौढ़—मेरा मतलब और क्या होगा । परसों एक बीमार साँस रहते मुर्दा-घर ले जाया गया था । उठते वक्त जब वह एक दम चिल्लाने लगा, तो इन यमदूतों ने उसे छोड़ा । रोज ही तो देखता हूँ ।

डाक्टर—कभी-कभी गलती हो जाती है ।

प्रौढ़—इसलिए कभी-कभी जिन्दे भी मुर्दा-घर पहुँचा दिए जाते हैं । क्या खूब इन्तजाम है ! क्या आप इन लोगों को मेरे लिए नहीं लगा सकते कि ये मुझे सोते-सोते उठा कर मुर्दा-घर ले जाएँ । मैं इस नापाक जिन्दगी से ऊब गया हूँ, डाक्टर साहब ।

डाक्टर—(हँस कर) जीवन किसी को बुरा नहीं लगता ।

प्रौढ़—मुझे लगता है...

डाक्टर—जब मरने लगोगे, तब चाहोगे कि जिन्दा हो जाऊँ ।

प्रोढ़—यह आपको कैसे मालूम ? क्या आप...

डाक्टर—डाक्टर जीवन और मृत्यु के बीच की दीवार है । दीवार हटते ही मृत्यु जीवन को दबोच लेती है ।

प्रोढ़—डाक्टर या उसकी दवाइयाँ ?

डाक्टर—डाक्टर और दवाई एक ही चीज है ।

प्रोढ़—शायद आजकल मौत का दूसरा नाम डाक्टर है !

डाक्टर—मौत डाक्टर के इशारे पर नाचती है ।

प्रोढ़ (उठकर बैठता हुआ) कृपा कर उसे इशारा कर दें कि वह जल्दी आ जाए । वैसे जब आप आ गए थे, तभी मैंने समझ लिया कि अब मौत आने वाली है ।

डाक्टर—अब तो दर्द नहीं है, अच्छे मालूम पड़ते हो ।

प्रोढ़—मालूम पड़ता हूँ, हूँ नहीं ।

डाक्टर—यानी !

प्रोढ़—आपके जाते ही वह आ जाएगी । आपके पीछे ही तो वह चलती है । जब वह नहीं आती, तो उसका छोटा भाई 'दर्द' आता है, दुःख आता है ।

डाक्टर—(हँस कर) तब तो मेरी बात सही है ।

प्रोढ़—जिसके हाथ में मौत रहती है, उसकी बात भूठ कैसे हो सकती है । धीरे-धीरे दर्द उठ रहा है, डाक्टर साहब । धीरे-धीरे बढ़ रहा है । इन्जेक्शन दे दीजिए, ताकि फिर सो जाऊँ । दर्द में घुल कर मृत्यु आ रही है । ओह !

डाक्टर—(देखता है, फिर जाता हुआ) ठहरो, नर्स आती है, वही दवा देगी ।

[डाक्टर जाता है; रोगी चिल्लाता रहता है । नर्स आकर फिर एक इन्जेक्शन लगा देती है ।]

नर्स—चिल्लाओ मत, सो जाओ ।

[इन्जेक्शन के प्रभाव से थोड़ी देर बाद रोगी फिर सो जाता है ।]

नर्स—(बूढ़े की तरफ मुड़ कर) अभी मरा नहीं यह ? खैर बहुत देर नहीं है । (जानी हुई, देखने आई औरत से) मुर्दा-घर से लाश ले जाना । वक्त

हो गया है, आप लोग बाहर जाइए । (चली जाती है)

[बूढ़ा आँख खोल देता है ।]

बुढ़िया—कैसी तबियत है ?

लड़का—कैसी तबियत है काका ।

बूढ़ा—(भरी आवाज में) बहुत देर नहीं है तुम लोग सुख से रहना ।... खयाल रखना... पढ़ना लिखना । अब मैं संतुष्ट हूँ । ब्याह हो गया । (थोड़ी देर रुक कर) भगवान्... दामोदर का भला करें । भगवान्... भला करे ।... (सिर लुढ़क जाता है)



दूसरा दृश्य

समय : शाम के सात बजे

[दामोदरलाल अपने मकान में टहल रहा है—बेचैन, व्यग्र । लम्बा कद, गोरा रंग, अण्डाकार मुँह, बड़ी-बड़ी आँखें, और उभरी नाक । दुहरा शरीर, खादी का कुरता-धोती पहने, और बड़ी दाढ़ी । बिखरे-बिखरे सिर के बाल । कमरा साधारण लम्बा-चौड़ा । बीच में एक तख्त, जिस पर गद्दा और धावर बिछी है । पीछे तकिया । एक तरफ अलमारी में कुछ बहियाँ रखी हैं । सामने सन्दूक की तरह ढलवाँ मेज जिसके किनारे पर दावात, कलम, रेतदानी हैं । उसके पूर्व की तरफ एक बेंच । सामने दीवार पर गांधी और जवाहरलाल की दो बड़ी तस्वीरें । दामोदरलाल अपने-आप बोल रहा है ।]

दामोदर—अब क्या होगा ? कुर्की होगी, और क्या होगा । मकान चला जाएगा । दुकान बोली पर चढ़ जाएगी । कुछ भी नहीं रहेगा । कल दोपहर तक सब साफ । रहने को मकान भी नहीं । व्यापार बन्द । भीख माँगनी पड़ेगी क्या ! (घूमता हुआ रुक कर) नीकरी कर लूंगा, पर दबूंगा नहीं । क्यों दबू ? कोई बेईमानी की है ? जाली हुण्डी बना कर धोखा दिया है ? इधर मैं कांग्रेस

में काम करता रहा। 'भारत सेवक समाज' के काम से गाँवों में घूमता रहा; उधर दोस्तों ने यह रास रचाया और घर नीलाम कराने का कचहरी से पुर्जा ले लिया। (टहलता हुआ) कोई बात नहीं। प्रतिष्ठा, मान, इज्जत सब गई। लोग कहेंगे, चोर है। दूसरों का रुपया मार कर बैठ गया। उसी का फल है। अब कोई विश्वास भी नहीं करेगा। बाजार में साख नहीं रहेगी।... यज्ञ करते हाथ जले हैं। पत्नी क्या कहेगी? नाते-रिश्ते के लोग क्या कहेंगे? दोस्त अहबाब मुझे किस नजर से देखेंगे? (गांधीजी के चित्र की ओर देर तक देखता है) बोलो, क्या कहते हो? यह देश-सेवा का फल है? बिना दस्तावेज, जिन्हें अपने भोलेपन में मैंने रुपया दिया वे आँखें फेर बैठे। वह ही सब, नहीं, आधा भी मिल जाए, तो कुर्की बच सकती है। (टहलता हुआ) वह तो कहो, रामनारायण की धरोहर तीन हजार की रखी है। तीन हजार (गोच कर) पर तीन हजार कहाँ हैं। हजार तो मंगली पंडित की शादी में गया। और यदि कल रामनारायण भी आ जाए? (मुँह पर पसीने की बूँदें चमकने लगती हैं) फिर क्या करूँगा! फिर कहाँ से दूँगा उसे?

[पत्नी का प्रवेश।]

पत्नी—लो, चाय पी लो। क्या हुआ मुकदमे का?

दामोदर—मेरे खिलाफ कुर्की हो गई। कल दोपहर तक नीलाम हो जाएगा। तैयार हो जाओ।

पत्नी—हूँ... लो, चाय लो।

दामोदर—क्या कहती हो?

पत्नी—मैं क्या कह सकती हूँ। रामनारायण आए थे।

दामोदर—(चौंक कर) क्या कह रहा था?

पत्नी—यह जान कर कि आप घर पर नहीं हैं, चले गए। कह गए फिर आऊँगा।

दामोदर—रुपया लेने आया होगा। (चाय का एक घूंट पी कर सोचता हुआ) उसका तीन हजार है। एक हजार मंगली की शादी में दे दिया।

पत्नी—पाँच सौ जवाहरलाल के फंड में।

दामोदर—तो डेढ़ हजार ही रहा ।

पत्नी—देना है तीन हजार । जब नहीं था, तो नहीं देते ।

दामोदर—हूँ, आशा थी कोठूमल की फर्म से मेरा पावना मिल जाएगा ।

पर वह तो दिवाला निकाल बैठा ।

पत्नी—कितना था ?

दामोदर—क्या बताऊँ ! (चाय पी कर प्याला रख देता है ।)

पत्नी—और लोगे ?

दामोदर—ले आओ, एक प्याला और । मन बड़ा बेचैन है ।

पत्नी—बताया नहीं, कोठूमल की फर्म से कितना लेना था ?

दामोदर—तुम एक प्याला चाय और ले आओ । सवेरे से नहीं पी है ।

दन-भर कचहरी में रहा ।

पत्नी—कहो तो मैं सेठ के पास जाऊँ ?

दामोदर—(हँस कर) पगली, दिवाला निकालने के बाद भी कोई देता है ।

सब दबा गए होंगे । सम्मिलित परिवार है । (कभी हँसता है, कभी गुमसुम हो कर देखने लगता है ।)

[पत्नी और एक प्याला चाय लेकर लौटती है ।]

पत्नी—गहना भी नहीं है ।

दामोदर—मैं छोड़ता तो होता न ! सभी तो काँग्रेस के काम में दे दिया ।

पत्नी—भगवान पर भरोसा करो, सब ठीक होगा ।

दामोदर—(हँस कर) क्या ठीक होगा ! अब क्या ठीक होगा ! कही से भी कोई आशा नहीं है । सब लेनदार है, देनदार कोई भी नहीं ।

पत्नी—पिछले दिनों कम-से-कम दस हजार रुपए से लोगों की मदद की होगी । कौन ऐसा है, जिसकी मदद नहीं की । कौन है, जो द्वार से खाली लौटा हो । देश के काम में बर्बाद हो गए, पिस गए । मजिस्ट्रेट ने भी यह सब नहीं देखा ।

दामोदर—मजिस्ट्रेट ने छः महीने की मुहलत दी थी । उस समय मैं गावों में काम कर रहा था । फिर मैंने ही खयाल नहीं किया । उसने तो कहा भी कि

दामोदरलाल बेईमान आदमी नहीं है, यह मैं जानता हूँ। पर मैं क्या करूँ, कानून अब इसके पक्ष में नहीं है। जितना कर सकता था किया। मित्रों ने सेल आर्डर निकलवा लिया है।

पत्नी—दस्तखत नहीं मिले होंगे।

दामोदर—(टहलते हुए रुक कर) दस्तखत मेरे ही थे। कैसे इन्कार करता। पर यह तो पुरानी बात है।

पत्नी—कब किए भला ?

दामोदर—यह याद नहीं आता। शराब भंग भी नहीं पीता, जो भूल कर कर दिए हों।

पत्नी—फिर यह हुआ कैसे ? मुझे तो बताया नहीं।

दामोदर—(बेंच पर बैठ घुटने पर कोहनी रख सिर पर हाथ फेरता हुआ) न जाने कैसे हुआ। हो गया वस, फिर तुम्हें बताना भी क्या। काँग्रेस के काम में मस्त था।

पत्नी—तुम्हारे दस्तखत नहीं होंगे।

दामोदर—मेरे ही दस्तखत है। मैंने ही टुण्डी पर दस्तखत किए हैं। कब किए यह नहीं जानता। खैर, अब क्या हो सकता है। अब तो जो कुछ होगा, भोगना ही है।

पत्नी—समाज का काम छोड़ कर घर का काम देखो।

दामोदर—अब समाज में भी मुझे कौन घुसने देगा ? कौन मुझ पर विश्वास करेगा ? सब कहेंगे, चोर है, बेईमान है, दिवालिया है।

पत्नी—तुम तो अपने को वैसा नहीं मानते। मन सुद्ध होना चाहिए, फिर कोई डर नहीं।

दामोदर—आदमी की प्रतिष्ठा भीतर से नहीं होती, बाहर से होती है। आजकल कैसा जमाना है, देखती तो हो, रोज देखती हो।

पत्नी—(थोड़ी देर चुप रह कर) पर मन सुद्ध, तो सब सुद्ध।

दामोदर—कहने की बातें हैं, कोरी बातें हैं।

पत्नी—पहले तो ऐसा कभी नहीं कहते थे। कष्ट है, तो क्या हुआ। मन

को मजबूत रखो। जा रहा है, तो जाने दो। क्या दुनियाँ में गरीब आदमी नहीं रहते। हम गरीबी में दिन काटेगे। गरीबी में रहेगे। हमारे पास सब से बड़ा धन है, नेकनीयती। मैं कह देती हूँ, तुम्हारा बाल भी वाँका नहीं होगा।

दामोदर—क्या स्त्री बड़ी भावुक होती है !

पत्नी—स्त्री में परमात्मा का वास नहीं है ?

दामोदर—(चुप रहता है)

पत्नी—उठो, चलो, खाना खाओ। तुम्हें कुछ भी नहीं होगा।

दामोदर—(हँस कर) तुम बड़ी भोली हो, शान्ति। तुम कल्पना भी नहीं कर सकती कि क्या होने वाला है कल दस बजे अमीन आ कर जब घर के आगे गुगुगी बजा कर बोली बोलेगा, और कहेगा कि दामोदरलाल के मकान की बोली है; और लछमनदास की फर्म के लोग हँसते हुए बोली बुलवाएँगे, मकान बिकाएँगे; सारे मुहल्ले के आदमी, पौरतें, बच्चे आ कर खड़े हो जाएँगे, और पूछेंगे कि 'क्या हुआ, क्या बात है, कैसी बोली है, मकान क्यों बिक रहा है ?' और उत्तर में लोग सुनेंगे कि रुपया न देने के कारण 'भारत समाज' के देशभक्त श्रीमान मन्त्री के मकान की बोली है; तब मेरा क्या रूप होगा, और तुम्हारे ऊपर क्या बीतेगी, जानती हो ? (पत्नी थोड़ी देर तक गुमगुम खड़ी रहती है।) बोलो, अब क्यों नहीं बोलती ! आज मेरे ऊपर से गांधी जी का नशा उतर गया; सब व्यर्थ है।

पत्नी—(पास जाकर) ऐसा न कहो बस, इतने ही कष्ट से घबरा गए ? तुम्हीं ने तो पिछले दिनों पुलिस की मार खाई। सिर फट गया, जेल गए, वहीं बीमारी भोगी। दुकान तबाह हो गई। कारबार बँठ गया। तब तो तुमने उफ तक नहीं की। आज क्या हो गया, जो इतने बेचैन हो रहे हो। भले काम में बिघ्न तो पड़ते ही हैं। भगवान ने यह परीक्षा ली है, जो इतने से के लिए धीरज खोए देते हो। मैं तो औरत जात हूँ। मैं नहीं घबराती हूँ तो तुम क्यों घबरा रहे हो। जैसा होगा भुगतेंगे। जिनको दिया है, उनके घर जाकर काम करेंगे। मैं उनका चौका-बर्तन करूँगी। दो आदमियों का पेट ही कितना है। तुम अपना काम ~~कर लो~~ किसी ने कहा है, नेकी कर कुँ में डाल।

इतना छोटा जी न करो । (इतना कहते ही खुद भी आँसू गिराने लगती है ।)

दामोदर—वस, मुझे उपदेश देते-देते खुद भी रोने लगें ।

पत्नी—(आँखें पोछती हुई) रो कहाँ रही हूँ । वह तो ऐसे ही...

दामोदर—ऐसे ही रोना आता है, शान्ति । भगवान से हमारा सेवा करना भी नहीं देखा गया । कहे देता हूँ, आज से अब कोई ऐसा काम नहीं करूँगा, जिसे परोपकार कहा जाता है । मैं भी बेईमानी करूँगा, ब्लैक करूँगा, धोखा दूँगा, और मालदार बनूँगा । आज मैंने जाना कि रुपया बड़ी चीज है । सौ घुरे काम करो, तो भी मालदार की लोग तारीफ करेंगे । चाँदी की चमक में सब पापों, कुकर्मों का अँधेरा ढक जाता है । वस, हो गया, बहुत हो गया । (टहलता है, उसके चेहरे पर क्रूरता और क्रोध के चिह्न आते जाते रहते हैं ।)

पत्नी—अब मैं क्या कहूँ । औरत की बुद्धि ही कितनी होती है । तुम तो समझदार हो ।

दामोदर—अब [समझदार बना हूँ । अब तक मूर्ख था । मेरे देखते-देखते लछमणदास ने चार कोठियाँ खड़ी कर ली । दस जगह उसका व्यापार होता है । मोटर, घोड़ा-गाड़ी, नौकर-चाकर अलग । जो लड़के जूते फटफटाते निकलते थे, वे आज बाजार में मूँछों पर ताव देते चलते हैं । लोग इशारों पर नाचते हैं । ब्राह्मण, वकील, डाक्टर, प्रोफेसर, सरकारी कर्मचारी, बड़े-बड़े अफसर उनके यहाँ आने में गौरव मानते हैं । चाँदी की जूती का प्रताप है शान्ति ! चाँदी की जूती का ।

पत्नी—पर वे भी तो हमारी तारीफ करते अब तक नहीं थकते थे । कहते थे कि देवता आदमी है । कितनी बार वे तुम्हारे घर नहीं आए ! सोचो, तुम ही सोचो । तुम्हारी उनकी क्या बराबरी ?

दामोदर—बराबरी जो थी, सो तुमने देख ली । मीठा छुरा भोंका है पेट में ।

पत्नी—क्या इसकी अपील नहीं हो सकती ?

दामोदर—अपील क्यों नहीं हो सकती । सब-कुछ हो सकता है । वकील ने खुद कहा कि कह दो जाली दस्तखत हैं । पर जब मेरे ही हूबहू दस्तखत हैं,

तो कैसे कह देता ? क्या झूठ बोलता ? मुझसे झूठ नहीं बोला जाता । मैंने कह दिया कि दस्तखत तो मेरे ही हैं; पर कब दस्तखत दिए, कब रुपया लिया, यह मैं यही जानता ।

पत्नी—फिर...

दामोदर—यह सवाल नहीं कि आपने रुपया लिया, या नहीं, मजिस्ट्रेट ने कहा । सवाल यह है कि इस टुण्डी पर आपके दस्तखत सही हैं, या नहीं, उसने फिर पूछा । मैंने फिर दुहरा दिया कि दस्तखत मेरे ही हैं । उसने कहा कि क्या तुम्हें शक है कि यह जाली हैं ?

पत्नी—तो तुमने क्या कहा ?

दामोदर—मैंने कह दिया मेरे ही दस्तखत हैं । इस पर मजिस्ट्रेट मन-ही-मन कुसमुसाया और उसने पूछा कब रुपया दोगे ? मैंने कहा रुपया, मेरे पास नहीं है, और न मैंने रुपया लिया है । बहुत हीलो-टुज्जत के बाद उसने मकान की कुर्की का फंसला सुना दिया ।

पत्नी—कोई मुहलत नहीं दी ।

दामोदर—मैंने न मुहलत मांगी, न कुछ कहा । मैं पहले ही चला आया ।

पत्नी—जब तुमसे वहाँ झूठ नहीं बोला गया, तो अब झूठ बोलोगे, धोखा दोगे, बेईमानी करोगे, ब्लैक करोगे ? अगर वहाँ कह देते कि दस्तखत मेरे नहीं हैं, तो मामला टल जाता, फिर तब तक हम रुपए का कुछ इन्तजाम करते ।

दामोदर—तुम तो वकील के भी कान काटती हो ।

पत्नी—मेरे भाई वकील है न ! कहो तो जाऊँ, वे मना नहीं करेंगे ?

दामोदर—नहीं, हर्गिज नहीं । जो कुछ होगा, देखूँगा । भीख ही माँगना बदा है, तो कौन रोक सकता है ! तुम्हें अगर इस अपमान से बचना हो, तो भाई के घर चली जाओ, वहीं रहो ।

पत्नी—कैसी बातें करते हो ? दुख हो या सुख, कभी मैंने तुम्हारा साथ छोड़ा है, जो अब छोड़ूँगी । तुम तीन-तीन साल जेल में रहे । मैं भूखी रही या प्यासी, कपड़े फटे थे या चिथड़े पहने थी, बीमार थी या मरती, कभी उफ तक नहीं की । भाई के घर भाँका तक नहीं । वे बुलाने आए तो कह दिया कि जब वे

आ जाएँगे, तभी आऊँगी। उनके पीछे देहली नहीं छोड़ूंगी।

दामोदर—मैं जानता हूँ, रानी ! तुम्हारा ही भरोसा तो मुझे है।

पत्नी—भरोसा तो भगवान का है, पर मैं इतना जानती हूँ कि तुम्हारे जैसा पति पाकर मुझे स्वर्ग के राज्य की भी चाह नहीं है। तुम चाहे मानों, या न मानों; मैं तुम्हें आदमी नहीं, देवता मान कर पूजती रही हूँ; जनम-जन-मान्तर में मुझे तुम्हारे चरणों की धूल मिलती रहे। (पैरों पर गिरने लगती है कि गद्गद् हो कर दामोदर उसे उठा लेता है।)

दामोदर—अब मुझे कोई चिन्ता नहीं। कल के बजाय मकान आज ही कुर्क हो जाए। अब मैंने तुम्हारा रूप जाना। नारी कितनी महान् होती है ! चलो, मुझे भूख लग रही है। अब मैं वेफिकर हूँ।

[पत्नी चलने लगती है। पीछे-पीछे पति। इतने में बाहर से आवाज आती है, “दामोदरलाल जी है क्या ? ”]

दामोदर—कौन होगा !

पत्नी—(पीछे लौट कर) रामनारायण होंगे मैं कह दूँ, अभी फुसंत नहीं फिर आना।

दामोदर—नहीं, आने दो। कौन, रामनारायण है क्यों ? (आवाज आती है : हाँ भैया।) (दरवाजा खोल देता है) आओ, रुपए लेने आए हो ! अरे, यह बगल में क्या है ?

राम०—कुछ ऐसे ही (निकाल कर) ये लो, इन्हें रख लो।

दामोदर—(उत्सुकता से) क्या है ?

राम०—बस, तुम रख लो !

दामोदर—मैं भी जानूँ। पहला ही बोझ काफी है। ‘क्या बताऊँ भाई रामनारायण ! मैं बोझा ढो कर, मजदूरी कर के भी तुम्हारा रुपया तुम्हें लौटाऊँगा। डेढ़ हजार तुम अभी ले जा सकते हो। सुनो, वह इनका रुपया इन्हें दे दो।

राम०—मैं नहीं समझा तुम क्या कह रहे हो !

दामोदर—तुम्हारे रुपयों की बात कह रहा हूँ और क्या ?

राम०—तो क्या मैं रुपया लेने आया हूँ ? छिः, लो, यह रखो ।

दामोदर—क्या है ?

राम०—रुपया; और क्या ? कल कुर्की के लिए अमीन आवे, तो उसके सामने लछ्मनदास फर्म को रुपया दे देना । मैं ही दे देता आ कर, पर मैं नहीं चाहता कि लाग देखें कि मैं रुपया दे रहा हूँ । लो, रखो ।

दामोदर—मैं नहीं लूँगा । ले जाओ ।

राम०—क्यों नहीं लोगे ?

दामोदर—नहीं मैं नहीं लूँगा, रामनाथ ! जो कुछ मेरे भाग में होगा, भोगूँगा । पर मैं किसी का रुपया नहीं लूँगा । न जाने कौन से पाप का फल है, जो मैं भोग रहा हूँ । तुम जाओ । इतनी ही तुम्हारी दया बहुत है, जे इतनी सहानुभूति मुझे दे रहे हो ।

राम०—भाभी, ओ भाभी !

[पत्नी आ कर, एक कोने में खड़ी हो जाती है ।]

राम०—(भाभी से) लो, यह रख लो, कल अमीन के सामने लेनदार को दे देना ।

दामोदर—मैं जो कह रहा हूँ कि मैं नहीं लूँगा ।

राम०—और जो मैं कह रहा हूँ । क्या मेरे भाई अपने छोटे की प्रार्थना नहीं मान सकते, लो ।

दामोदर—तुम्हें मालूम है कि मैंने लछ्मनदास फर्म का रुपया मार लिया है । मैं चोर हूँ, बेईमान हूँ, फिर भी तुम मुझको रुपया दे रहे हो !

राम०—मैं जानता हूँ, तुम क्या हो । तुमने अपना गारा जीवन देश सेवा में लगा दिया । व्यापार छोड़ा, जेल काटी । गांधीजी की पुकार पर हमारे नगर से तुम्हीं एक निकले, जिसने नगर का नाम उज्ज्वल किया जब से हमने यह सुना कि तुम्हारे ऊपर लछ्मनदास फर्म ने कुर्की करा ली है, बेईमानी से तुम्हें फाँस कर तुम्हें बदनाम करने का जाल रचा है, तब से सारा नगर दुखी हो उठा है ।

दामोदर—मैंने दस्तखत करके रुपया लिया ही होगा । अब मुझे याद नहीं

आ रहा है, तो इसमें उस फर्म का क्या दोष है ? वह अपना पावना लेगी ही । इसलिए...

राम०—इसलिए उस आदमी का मकान कुर्क होगा, जिसने जीवन भर देश की सेवा की है लो, यह रखो ।

दामोदर—मकान तो कुर्क होना ही है । आज रुपया दे कर बच जाऊँगा, तो कल तुम्हें भी तो देना होगा । फिर...

राम०—भैया, तुमने मुझे नहीं पहचाना । न मैं पिछला रुपया लूँगा, और न यही, मुझसे लिखवा लो ।

दामोदर—क्यों नहीं लोगे वह रुपया ? नहीं रामनारायण, यह नहीं हो सकता । मैंने देश सेवा किमी की भीख पर नहीं की है । अब जो-कुछ थोड़ा-बहुत कर रहा हूँ, वह किसी पर एहसान नहीं है । तुम जाओ, ले जाओ यह पहला भी ।

राम०—भाभी, मैंने तुम्हें सदा माता के समान माना है । मैं माता के चरणों में यह तुच्छ भेंट अर्पित कर रहा हूँ, मना न करना हाँ । (रामनारायण मना करते हुए भी थंली शान्ति के चरणों पर रख देता है ।)

पत्नी—यह क्या कर रहे हो, लाला ? बिना इनकी आज्ञा के मैं कैसे ले सकती हूँ ?

राम०—यह माँ को भेंट है, जिसने पति की स्मृति में उनके चरण-चिन्हों पर चलते हुए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है ।

[पत्नी पति की ओर देखती है ।]

दामोदर—क्या कहूँ ?

राम०—मना न करना, भाभी ! केवल एक तुम्हारा सहारा ले कर आया हूँ । मैं जानता था, भैया नहीं मानेंगे । (बाहर से एक आवाज आती है—‘अरे दामोदर हैं क्या ? दामोदर !’) यह तो बूढ़े लछमनदास की आवाज लगती है ।

दामोदर—लछमनदास, वह क्यों आते ? जाओ, देखो कौन है, ? ठहरो, मैं देखता हूँ । (जाता है ।)

[एक आदमी के साथ बूढ़े का प्रवेश ।]

लछमन०—बड़ा लज्जित हूँ, दामोदर ! ये नालायक लड़के जो न करें, सो थोड़ा । मुझे क्या मालूम कि इन छोरों ने यह किया है । भैया, माफ करना, मैं तुमसे माफी माँगने आया हूँ । माफ कर दो । बोलो, माफ कर दिया ।

दामोदर—कुछ समझा नहीं । कैसी माफी ? उसमें आपका क्या दोष है ? मैंने रुपया लिया, नहीं दिया, कुर्की हो गई ।

लछमन०—(दोनों हाथ जोड़ कर) दामोदर तुम मेरे बेटे के समान हो । आज मेरा सिर गरम के मारे जमीन में गड़ा जा रहा है । इन नालायक छोरों ने मुझे कहीं मुँह दिखाते लायक नहीं छोड़ा ।

राम०—आपने उस समय नहीं देखा, जब आपके सपूतों ने मुकदमा चलाया ।

लछमन०—मुझे क्या मालूम । मैं क्या जानूँ । मैं तो कल ही यात्रा से लौटा हूँ । कसम ले लो, जो मुझसे किसी ने भी कुछ पूछा हो । लो, यह फाड़ देता हूँ । (फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर देता है ।)

राम०—तो, तो भैया ने कभी आपसे रुपया लिया था ?

लछमन०—अरे, वह तो कभी का दे दिया था । हमने वह कागज लौटाया नहीं । न जाने क्यों, इन्होंने ही वापस नहीं माँगा । बस, वह पड़ा ही रहा, उसी का यह नतीजा है ।

दामोदर—मुझे तो याद नहीं है ।

लछमन०—मुझे याद है, तुमने एक विद्यार्थी को बाहर भेजने के लिए रुपया माँगा था । मैं उन दिनों पक्का बनिया था । मैंने कहा दस्तावेज लिख दो, दे दूँगा । तुमने हुण्डी लिख कर रुपया लिया था ।

राम०—कब की बात है ?

दामोदर—हाँ, याद आया । वह तो उस लड़के ने विलायत से लौटते ही लौटा दिया था ।

लछमन०—एक-एक पैसा लौटा दिया । पुरानी बहियों में जमा है । बस, जो तकलीफ हुई उसकी माफी चाहता हूँ, दामोदर ! तुम धन्य हो, बेटा !

दामोदर—(हँसता है) अजीब बात है ! खैर ।

लछ्मन० —वस, एक बार कह दो माफ कर दिया ।

दामोदर—आपको जो कष्ट हुआ उसके लिए क्षमा चाहता हूँ ।

लछ्मन०—मेरा जी खुश हो गया, संतोष भिला । अच्छा, तुम जीते रहो ।

[लकड़ी के सहारे चला जाता है । सब देखते रहते हैं ।]

दामोदर—(रामनारायण से) अब तुम इसे ले जाओ ।

पत्नी—हाँ, ले जाओ लाला । (उठा कर देती है) मैं कहती थी न !

दामोदर—पतिव्रता के मुँह से भूठ थोड़ ही निकलता है ।

[मंगली पुरोहित का लड़का आता है ।]

पत्नी—कहो वेटा, ब्याह हो गया तुम्हारी बहन का ?

लड़का—हाँ माता जी, हो गया । पिताजी...

पत्नी—क्या हुआ मंगली पुरोहित को ?

[लड़का आँसू बहाने लगता है ।]

पत्नी—(पास जा कर हाथ रखती हुई) क्या हुआ ?

लड़का—अस्पताल में मर गए । माँ ने भेजा है, कहा है, पंडितजी के पास और तो कुछ नहीं था, मरते-मरते एक बात कह गए हैं ।

पत्नी—क्या ?

लड़का—मरते-मरते उनके मुँह से केवल एक ही बात बार-बार निकलती रही—‘भगवान दामोदर सेठ का भला करेंगे ।’ माँ ने यही कहने भेजा है । और कहा है, मेरा लड़का बड़ा हो जाएगा, तब हम सब रुपया चुका देंगे । तब तक के लिए आप हमें मोहलत दें ।

राम०—तुम पढ़ते हो ?

लड़का—पढ़ना तो चाहता हूँ, पर सोचता हूँ, अब शिक्षा चलाऊँगा ।

दामोदर—क्यों ?

लड़का—गुजारा भी करना है ।

दामोदर—रामनारायण, बोलो, क्या कहते हो ?

राम०—यह तुम्हारे पास है, इसी से इसकी सहायता करना । मैं इसे

छूँगा भी नहीं। मैं चला।

दामोदर—(लड़के से) बेटा, तुम हर मास तीस रुपया घर ले जाया करो, समझे ! रिक्शा चलाने की जरूरत नहीं है।

लड़का—अच्छा। (रोता है)

दामोदर—तुम चलो, मैं अभी आता हूँ। सब सामान पहुँच जाएगा, जाओ। (रोता हुआ चला जाता है। रामनारायण से) रामनारायण, तुम सामान ले कर पहुँचो, मैं अभी आया।

पत्नी—खाना.....

दामोदर—अब खाने से पहले यह जरूरी है शान्ति ! न जाने कितने दुखी होंगे बेचारे।

[पति को जाते देखती है, उसकी आँखों से पति के प्रति श्रद्धा के आँसू टपकने लगते हैं।]

पत्नी—मेरे देवता !

(नेपथ्य में एक आवाज सुनाई देती है)—‘इस हाथ दे उस हाथ ले। इस हाथ दे उस हाथ ले।’

पात्र

विजयसिंह	: एक पराजित सरदार
दुर्जनसिंह	: एक प्रतिद्वन्द्वी
नाहरसिंह	: दुर्जन का साथी एक ठाकुर
शेरसिंह	: दुर्जन का मित्र
भीखा	: एक भील
रोसू	: भीखा का लड़का
दुर्गा	: विजयसिंह की लड़की

प्रथम दृश्य

समय—सायंकाल के तीन बजे

[अरावली पहाड़ी पर मन्दिर का भग्नावशेष । मन्दिर की सीढ़ियाँ उतर कर झुरमुट में एक गुफा है । द्वार पर एक दूटी सी चटाई पड़ी है, उस पर एक वृद्ध लेटा है, जिसके शरीर पर घावों के कई चिन्ह हैं, कुछ घाव ताजे भी हैं । बूढ़े की आयु ५० साल, शरीर गठा हुआ, रंग साँवला, कद ठिगना, माथा ऊँचा, आँखें धँसी हुई, परन्तु तीव्र; कनपटी की हड्डी उभरी हुई, दाढ़ी कानों से बँधी, मूँछे घनी, कानों में मुरकियाँ पड़ी हुई हैं जिनके हीरे चमक रहे हैं । सफेद अंगरखा पहने हैं । पास ही तलवार, घुटनों तक राजपूती ढंग की धोती है । एक पत्थर का सिरहाना बनाए लेटा है । अस्त होने वाले सूर्य की किरणें झाड़ी से छन कर उसके मुँह पर पड़ रही हैं । चेहरे पर उदासी छाई हुई है । कभी-कभी गहरी साँस खींच कर उठ बैठता है, फिर लेट जाता है । कभी हाथ से मक्खियाँ उड़ाकर मूँछ और दाढ़ी पर हाथ फेरता है । बिखरे हुए बाल एक ओर करने लगता है । कभी चटाई से तिनका तोड़कर कान कुरेदने लगता है । कुछ मन ही मन बुड़-बुड़ाता है, फिर चुप हो जाता है ।]

वृद्ध—(एकाएक ऊँची आवाज से) दुर्गा, ओ दुर्गा, दुर्गा बेटी, कहाँ गई री ? क्या अभी.....अरी क्या अभी तक नहीं हुआ !

[झाड़ी के पश्चिम की ओर से दौड़ती हुई १८ साल की लड़की आती है । सुन्दर भरा हुआ मुख, सुर्ख गाल, पतले होंठ, लम्बी नाक, बड़ी-बड़ी आँखें, दमकता हुआ चौड़ा माथा, बिखरी हुई घूँघर वाली लटें, लाल रंग की धोती जो मराठी ढंग से बँधी है, जिससे छाती का उभार दब गया है, गोल-गोल बाहें बाहर निकली हुई हैं ।]

दुर्गा—अभी कहाँ हो पाया पिताजी ?

वृद्ध—इतनी देर हो गई बेटी, गला सूखा जा रहा है ?

दुर्गा—दूध हाँड़ी में रख कर जैसे ही मैं लकड़ी बीनने गई वैसे ही लौटकर क्या देखती हूँ कि जंगली विल्ली दूध पी रही है। फिर बकरियाँ दुह कर दूध आटाया है। (जाती है)

वृद्ध—हाँ बेटी, जरा जल्दी करो। मेरा गला सूखा जा रहा है। (अपना गला मसलते हुए) जरा सी देर में क्या से क्या हो गया ? ठीक है अभी जीना होगा। जीऊँगा। कौन जानता था विजयसिंह को ये दिन भी देखने होंगे ? (लड़की लौट जाती है) दुर्जन, उस दुष्ट दुर्जन ने कैसा बदला लिया ? गला सूख रहा है। (डिबिया में से बची हुई अफीम एक बार ही सब मुँह में रखता हुआ) थोड़ी देर में जैसे सब समाप्त हो गया। आँखों में आँसुओं के घड़े भर कर इस पहाड़-सी जिन्दगी को काटना ही होगा। दुर्गा, ओ दुर्गा !

दुर्गा—आई पिताजी।

वृद्ध—रहने दे बेटी ! (अफीम की पिनग में घूमने लगता है।)

[एक भील के लड़के का प्रवेश]

लड़का—सरदार, भीखा पकड़ा गया। भीखा पकड़ा गया मालिक ! उन्होंने उसे पकड़कर खूब मारा और बाँध लिया है।

[दुर्गा दूध की हाँड़ी और पत्तों का बना हुआ दोना लिए आती है।]

वृद्ध—(एक दम चिल्लाकर) ठहरो दुष्टो, ठहरो तो सही। (उठकर खड़ा हो जाता है फिर गिर पड़ता है। दुर्गा उसे सँभालकर लिटा देती है।)

दुर्गा—आप शान्त होकर लेट जाइए पिताजी !

वृद्ध—(आँखें खोलकर) छोड़ तो दे बेटी ! (तलवार की मूठ पर हाथ रखकर निकालने की चेष्टा करता हुआ) उस दुर्जन को अब मैं बिना मारे न छोड़ूँगा। (पिनग में)

दुर्गा—पिताजी, मैं दूध ले आई हूँ। भीखा को दुर्जन ने पकड़ लिया है।

लड़का—हाँ सरदार, मेरे बाप को राव दुर्जनसिंह ने पकड़ लिया है। वह उसे मार-मार कर तुम्हारा पता पूछ रहा है।

वृद्ध—(होश में आकर) मेरा, क्या मेरा पता पूछ रहा है कि मैं कहाँ ठहरा हूँ ?

लड़का—हाँ !

दुर्गा—तो क्या उसने हमारी जगह बता दी !

लड़का—नहीं बाई, वह मार खाकर भी कह रहा था, 'मैं नहीं जानता !'

वृद्ध—पर मुझे अफीम तो मिलनी ही चाहिए । बिना अफीम के मैं कैसे जीऊँगा बेटी !

दुर्गा—दूध तैयार है । (दोने में दूध उड़ेलकर वृद्ध को देती है । वृद्ध दूध लेकर पीने लगता है) हाँ, रोसू, तो क्या भीखा ने हमारा पता नहीं बताया ?

लड़का—नहीं बाई, उन्होंने उसे बुरी तरह मारा, फिर भी नहीं ।

दुर्गा—दुर्जन ने उससे क्या कहा ! तुम लोग उस दुष्ट के पास क्यों गए ?

[वृद्ध दूध पीता-पीता भूम जाता है, दूध गिर जाता है दुर्गा उसे मुँह पोंछकर लिटा देती है]

लड़का—भीखा को तुमने अफीम लेने भेजा था न ! गाँव में किसी के पास भी अफीम तो थी नहीं । और होगी तो हमें मना कर दिया । फिर हम नाहर सिंह के पास गए । उससे (वृद्ध की ओर इशारा करके) इनका नाम लेकर अफीम माँगी । उस दुष्ट ने हमें भीतर ले जाकर बैठाया और अफीम लाने के बहाने दुर्जनसिंह को बुला लाया । उसने आते ही भीखा को पकड़ लिया और अपने साथियों से बापू को खूब पिटवाया । भीखा ने मुझसे इशारे से भाग जाने को कहा । मैं वहाँ से सरककर एक खम्भे की आड़ में हो गया और बापू को मार खाते देखने लगा । (आँखों में आँसू डबडबाने लगते हैं)

वृद्ध—पर अफीम तो मिलनी ही चाहिए । मैं उसके बिना कैसे जीऊँगा । (पिनग में झूलने लगता है)

दुर्गा—दुर्जन क्या कह रहा था ?

लड़का—वह भीखा को मार-मार कर तुम्हारा पता पूछ रहा था ।

दुर्गा—(चौंककर) मेरा !

लड़का—हाँ, वह तुम्हारा नाम ले लेकर उसे मार रहा था ।

दुर्गा—पिताजी का या मेरा ।

लड़का—तुम्हारा बाई ।

दुर्गा—(सुन्न सी होकर) हूँ ।

[लड़का दुर्गा की तरफ देखता है मानों वह उसके हृदय की उथल-पुथल और सम्पूर्ण मनोविकारों को सावधानी से पढ़ रहा हो ।]

वृद्ध—(पिनग से चंतन्य होकर) उस दुर्जन को मैं मार डालूंगा बेटा ! पर अफीम, अभी भीखा नहीं लौटा ।

दुर्गा—भीखा को दुर्जन ने पकड़ लिया है ।

वृद्ध—चलो जाने दो, अफीम तो ले आया है ? (ऊँघने लगता है)

दुर्गा—पिताजी.....

लड़का—बाई !

दुर्गा—(लड़के की ओर देखती है) हाँ ।

लड़का—बाई वे सब तुम्हारे पीछे पड़े हैं । तुम्हें बुरी बात कह रहे थे । मुझे बड़ा बुरा लगा । [पर क्या करता..... (आह भर कर दुर्गा की तरफ देखता रह जाता है ।)]

दुर्गा—(धीरे-धीरे चेष्टा बदल रही है पहले डरी सी, फिर धीरे-धीरे हड़ सी, और उसके बाद क्रोध से उसकी आँखें जलने लगती हैं । लड़का डर जाता है, फिर उदासी छा जाती है ।) हूँ ..

लड़का—तो फिर मैं बकरियों को घेर लाऊँ, नहीं तो कोई बाघ खा जाएगा ।

दुर्गा—हाँ जा !

लड़का—(जाते-जाते ठहर कर) बाई ?

दुर्गा—हाँ, रोसू कह, क्या है ? (लड़का आँखों में आँसू भर कर खड़ा रहता है ।) अरे रोता क्यों है ?

लड़का—(और जोर-जोर से सुबुकने लगता है और दुर्गा कुछ न कह कर उसकी पीठ थप-थपाती है) दुर्जन तुम्हारा.....

दुर्गा—जा बकरियाँ घेर ला ।

लड़का—तुम्हें बड़ा दुख है बाई !

[दुर्गा दूसरी तरफ मुँह फेर लेती है उसकी आँखें डबडबा आती है ।]

वृद्ध—(चौंककर) अब मैं जी नहीं सकता । दुष्ट दुर्जन ने मेरा नाश कर दिया, सब कुछ छीन लिया । बेटी दुर्गा, मेरी अफीम का कोई प्रबन्ध करो ।

दुर्गा—पिताजी !

वृद्ध—बेटी, तुम जानती हो मेरा सब कुछ चला गया । आज भागकर, बेहाल होकर यहाँ अरावली के जंगल में पड़ा हूँ । कौन-सा अपमान, कौन-सी लांछना, कौन-सी व्यथा, कौन-सा दुःख नहीं भेल रहा हूँ ? मेरी सारी जागीर आज छिन चुकी है । दाने-दाने का मोहताज हूँ । तुम्हारी भी क्या दुर्दशा है (गला भर आता है) मेरी बेटी, (चुप होकर फिर लेट जाता है)

लड़का—बाई !

दुर्गा—जा दकियाँ घेर ला । साँभ हो रही है ।

लड़का—अच्छा ।

वृद्ध—(करवट बदल कर) बेटी, मैं तुम्हारी यह दुर्गति अच्छी तरह समझ रहा हूँ । आज तुम्हारी माँ को मरे दस साल हो गए । मैंने दूसरा व्याह नही किया, तुम्हें आँखों का तारा समझकर केवल तुम्हारे सहारे जिनदगी की कड़वी घड़ियों का जहरीला घूँट पीता रहा हूँ । केवल एक ही व्यसन है मुझमें । वह, वह है अफीम । आज उसने भी जवाब दे दिया । हाँ ! (बेचैनी से करवटें लेने लगता है) अफीम के बिना मैं जी नहीं सकूँगा । नहीं जी सकूँगा । (दुर्गा चुप रहती है ।) भीखा नहीं लौटा । मेरी अफीम का प्रबन्ध करो बेटी !

दुर्गा—(कुछ सोचकर) पर दुर्जन को तो आप जानते ही हैं ।

वृद्ध—जानता हूँ । जानता क्यों नहीं ? फिर भी जी नहीं मानता । मुझे अफीम चाहिए तुम दुर्जन के पास..... ।

दुर्गा—(चौंककर) क्या कहा !

वृद्ध—पिता का जीवन है !

दुर्गा—(आवेग में) मैं कन्या हूँ पिताजी, विजयसिंह की लड़की हूँ ।

वृद्ध—पर मुझे रहा नहीं जाएगा । इधर आसपास दूर तक कोई गाँव नहीं है । मुझे अफीम चाहिए ।

दुर्गा—आपका ही बताया हुआ धर्म का बन्धन आज.... ।

वृद्ध—धर्म परिस्थितियों का दास है। जिन मर्यादाओं में बंधकर हमने धर्म को, समाज को बनाया है, जब वही नहीं रहें तब धर्म को क्या करूँ।

दुर्गा—पर धर्म इतनी जल्दी छोड़ देने की चीज भी तो नहीं है, यह आपने ही तो मुझे बताया है। पगडंडी से हटते ही कन्या का जीवन मृत्यु का ग्रास बन जाता है। जीवन में कलंक तो मानों स्त्री अपने आंचल में छिपाकर लाई है। जिस दुर्जन ने मेरे पीछे आपकी जागीर लीन ली, आपको कहीं का न रखा, और आपने मेरी मर्यादा के लिए सर्वस्व त्याग कर दिया, आज जरा से व्यसन के पीछे आप मुझे उसी के पास जाने की आज्ञा दे रहे हैं पिताजी !

वृद्ध—(सोचकर) तुम ठीक कहती हो बेटी ! तर्क केवल तर्क करने के लिए ही होता है। धर्म पर दृढ़ रहते हुए भी उसने मेरी कोई रक्षा नहीं की। मैं आज प्रशान्ति का कंकाल, अपवित्रता का उद्गार, अत्याचार का पुँज होकर अपनी एकमात्र धर्म की प्रतिमा को लेकर, विश्वास को कंधे पर उठाए घूम रहा हूँ। तुम्हीं कहो।

दुर्गा—आपकी लड़की होकर मैं आपको दोषी नहीं ठहराना चाहती। परन्तु आपकी सिखाई हुई इतना तो जानती हूँ कि धर्म का बोझ संसार के सबसे बड़े भार में से एक है। उसे सँभालने के लिए मनुष्य को संपूर्ण शक्ति की जरूरत है। जीवन में सतर्कता, साहस होने पर ही वह रह सकता है। व्यसनी झूठा, चंचल, उसकी रक्षा नहीं कर सकता। मानों ईश्वर ने केवल यही एक थाती देकर मनुष्य को संसार में भेजा है परीक्षा के लिए।

वृद्ध—तो तुम क्या कहती हो कि मैं मर जाऊँ ? धर्म ऊँचा है सही, पर जीकर ही तो धर्म की रक्षा हो सकती है बेटी ! (अफीम के अभाव से छटपटाने लगता है) बेटी, नहीं, रहने दो। धर्म बड़ा है। धर्म का भारीपन परीक्षा के समय मालूम होता है। ओह ? (गला सूखने लगता है, मुँह से आवाज नहीं निकलती। दुर्गा दूध लाकर पिता के मुँह में डालती है, वृद्ध बिलकुल शिथिल हो जाता है, शरीर टूटने लगता है, वृद्ध करवट बदलने लगता है। एक दम जी कड़ा करके) ठीक है, मैं इसी तरह अभाव में मर जाना चाहता हूँ। बेटी, अब जीने की आवश्यकता नहीं है। धर्म पर दृढ़ रहने से अधिक संसार में और कुछ

नहीं है। कुछ नहीं है...। (फिर जो टूटता है कराहने लगता है दुर्गा एक घूंट दूध बूढ़े के मुँह में डालती है, वह थोड़ी देर के लिए निस्तब्ध हो जाता है।)

दुर्गा—(पिता की अवस्था देखकर) क्या करूँ ! मैं जाऊँगी ? मैं जाऊँगी।

वृद्ध—(चेतन होकर) नहीं बेटी, अब जाने की जरूरत नहीं है। मैं इसी प्रकार मरूँगा, अपने पाप तुम्हारे ऊपर नहीं लादना चाहता बेटी, (टीस सी भर कर) अब नहीं, अब नहीं जीऊँगा।

दुर्गा—नहीं पिताजी, मैं भूल रही थी। जिस पिता ने मुझे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया, जिसने अपना सर्वस्व देकर पुत्री की रक्षा की। वही स्वार्थ को धर्म समझकर पिता की रक्षा नहीं करती। मेरी भूल है। मैं जाती हूँ। (पिता को करवटें लेकर तड़पते देखकर) मेरी भूल है। धन का अभाव होने पर साधु सेवा के लिए कबीर अपनी स्त्री को कंधे पर बैठाकर सेठ के यहाँ ले गए। मैं पिता की प्राण रक्षा के लिए क्या अपने को होम नहीं सकती ! जरूर जाऊँगी। मैं जाती हूँ। गाँव में सब मेरे शत्रु है। दुर्जन निःशंक होकर मुझ पर अत्याचार करे। सब सहँगी। इधर दूर पास और कोई गाँव नहीं है। वही जाकर दुर्जनसिंह से आपके लिए अफीम लाऊँगी। पिता के प्राणों की रक्षा करूँगी।

[एक तरफ से बाहर निकल जाती है दूसरी ओर से लड़के का प्रवेश]

वृद्ध—क्या हुआ, क्या कहा ! दुर्गा, बेटी दुर्गा, (लड़के की ओर देखकर) अरे दुर्गा कहाँ है, दुर्गा, ओ बेटी दुर्गा ?

लड़का—सरदार, वह तो, वह तो...

वृद्ध—(एक दम उठकर) हाँ हाँ, बता दुर्गा कहाँ है ? कहाँ है रे ! गई, क्या गई रे, पापी पिता के व्यसन में अपने प्राणों की आहुति देने गई ! मेरे पापों का प्रायश्चित्त करने गई। अब न जीऊँगा। (अफीम का ध्यान आते ही) ठीक है, पिता के दुष्ट पिता के प्राणों को बचाने।

लड़का—सरदार, बाई गई ! दुर्जनसिंह के पास !

वृद्ध—(शिथिल सा होकर) हाँ, हाँ गई। आग में जलने, दुर्जन की वासना के समुद्र में डूबने; उसकी कुत्सित अभिलाषाओं के पहाड़ से अपने कोमल हृदय

को टकरा कर चूर-चूर करने । यह इतिहास से भिन्न नई घटना है कि एक लड़की पिता की, पापी पिता की इच्छाओं पर अपने को चढ़ाने गई है । (दुःख से विह्वल होकर गिर पड़ता है ।)

दूसरा दृश्य

समय—सायंकाल

[दुर्जनसिंह विजयसिंह के मकान के बरामदे में एक पलंग पर गाँव तकिए के सहारे बैठा है । हुक्के की सड़क उस के मुँह में है । दो-चार ठाकुर इधर उधर नीचे बिछी चटाई पर बैठे हैं । भीखा सामने एक खम्भे से बाँध दिया गया है । दुर्जन की वयस लगभग ३५ वर्ष । रंग काला, आँखें बड़ी-बड़ी पर जैसे क्रूरता उनमें झलक रही है तथा शराब के नशे से लाल हो रही है । शरीर पर राजपूती पहनाव ।]

नाहरसिंह—देख भीखा, अगर तू विजयसिंह का पता बना दे तो अभी तुझे छोड़ा जा सकता है । (भीखा चुप रहता है)

करनसिंह—और छोड़ने के साथ-साथ तुझे कुछ इनाम भी मिलेगा ।

शेरसिंह—नहीं तो यहीं सिसक-सिसक कर प्राण देने होंगे समझे ।

दुर्जनसिंह—नहीं बताता तो मारो साले को । (अपने आप उठकर पास पड़ा हण्टर उठाकर सड़-सड़ पाँच-सात जमा देता है । भीखा, प्रत्येक हण्टर की चोट पर ग्राह भरकर रह जाता है, और कुछ नहीं बोलता)

नाहरसिंह—यों न बताएगा सरदार, इसके शरीर को आग से जलाया जाए ।

दुर्जनसिंह—देख, क्यों अपनी जान देता है अरे, बता दे विजयसिंह कहाँ है ?

भीखा—भील का बच्चा प्राण दे देगा, पर विश्वासघात न करेगा । तुम मेरी बोटी-बोटी काट डालो पर सरदार का पता नहीं बताऊँगा । दुर्जनसिंह !

[दुर्जनसिंह फिर, क्रोध में आकर उसे मारता है और उसे बेदम कर देता है पर भीखा आह के सिवाय कुछ नहीं कहता । दुर्जनसिंह पलंग पर लेट कर फिर क्रोध में भरा, हुक्का पीने लगता है]

दुर्जनसिंह—नाहरसिंह, अब क्या किया जाए !

नाहरसिंह—अरावली की सारी पहाड़ी छान डाली पर उसका कहीं पता नहीं लगा ।

शेरसिंह—इतना तो निश्चित है कि वह है यहीं कहीं । नहीं तो अफीम लेने भीखा यहाँ न आता ।

दुर्जनसिंह—वह यही है । मालूम होता है मेरी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होगी । जानते हो नाहरसिंह मेरी क्या प्रतिज्ञा है ?

नाहरसिंह—नहीं सरदार !

दुर्जनसिंह—मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं विजयसिंह की लड़की को बाँदी बना कर रखूँगा, यह प्रतिज्ञा क्यों की मैंने ! मेरे पिताजी ने विजयसिंह के बाप से कहा कि वह अपने लड़के की शादी मेरी लड़की से करे । विजयसिंह के बाप ने हमें अकुलीन बताकर मेरे पिता का अपमान किया और दूसरे ठाकुर की लड़की से विजयसिंह की शादी कर दी । यह अपमान का शूल पिताजी को मरने तक चुभता रहा, पर वे कमजोर थे इसलिए मरते समय उन्होंने मुझसे कहा ।

नाहरसिंह—सरदार ने तुम्हारा ही नहीं कई बार मेरे पिता का भी अपमान किया है । मैं तो यह चाहता ही था कि कब इसका बदला लूँ । ईश्वर ने वह दिन दिखा दिया ।

दुर्जनसिंह—पिताजी की मृत्यु के समय का दृश्य मुझे याद है । अन्तिम दिनों में उन्होंने अपने पास बुलाकर मुझसे कहा था—बेटा, मैं तुमसे एक ही बात चाहता हूँ । प्रतिज्ञा करो कि पिता की यह बात मानोगे । मेरे प्रतिज्ञा करने पर उन्होंने कहा—“सुजनसिंह ने मेरा बड़ा अपमान किया है अगर तुम उससे बदला लेने की प्रतिज्ञा करो तो मैं सुख से मर सकूँगा ।” इस तरह कहते-

कहते उनका गला रुक गया आँखों में आँसू आ गए ।

शेरसिंह—फिर आपने क्या जवाब दिया ?

दुर्जनसिंह—मुझे यह सब कुछ मालूम न था । मैंने उसी समय प्रतिज्ञा की मैं विजयसिंह से भरपूर बदला लूँगा । और उस की लड़की को अपनी बाँदी बना कर रखूँगा ।

नाहरसिंह—होगा सरदार, यह भी होगा ।

शेरसिंह—क्यों नहीं । वह कहाँ जा सकता है । आज नहीं तो कल मिलेगा अवश्य !

[दुर्जनसिंह बोतल में रखी ताड़ी दोने में निकाल कर पीते हैं, नाहरसिंह और शेरसिंह दोनों पीकर भीखा को मारने लगते हैं पर वह कुछ नहीं बोलता, केवल आह भरता है इसी बीच दुर्गा एक दम उसके सामने जा खड़ी होती है सब लोग हैरानी से उसकी तरफ देखते हैं]

भीखा—एक दम उसे देखकर उठकर 'बाई' कहता है और फिर पीडा से गिर पड़ता है ।

नाहरसिंह—दुर्गा !

दुर्जनसिंह—विजयसिंह की लड़की !

दुर्गा—हाँ दुर्जनसिंह ! मैं तुम्हारे पास आई हूँ । मेरे पिताजी बिना अफीम के मर रहे हैं । भीखा को छोड़ दो और उसे अफीम देकर पिताजी के पास जाने दो !

[दोनों निस्तब्ध रह जाते हैं]

दुर्जनसिंह—अहा हा, शिकार स्वयं आ गया । (उठता हुआ) अब तुम्हें न छोड़ूँगा । आओ ।

दुर्गा—मैं मौजूद हूँ । मैं विश्वास दिलाती हूँ मैं जब अपनी इच्छा से आई हूँ तो भागूंगी भी नहीं । क्षत्रिय कन्या कभी झूठ नहीं बोलती ।

दुर्जनसिंह (हँसकर)—आखिर तुम्हारे पिता ने तुम्हें मेरे पास भेज ही दिया ! अफीम के पीछे अपनी कन्या शत्रु को देते हुए उसे लज्जा न आई दुर्गा !

दुर्गा—उन्होंने नहीं भेजा, मैं स्वयं आई हूँ ।

दुर्जनसिंह—तुम्हें मालूम है मैं क्या चाहता हूँ ?

दुर्गा—(हड़ता से) जानती हूँ सब जानती हूँ । भीखा को छोड़ दो । इसे अफीम दे कर पिताजी के पास भेज दो । भेज दो दुर्जनसिंह !

दुर्जनसिंह—(नाहरसिंह से) भीखा को छोड़ दो । और अफीम दे दो ।

[नाहरसिंह भीखा को खोल देता है । भीखा अफीम लेकर खड़ा हो जाता है, दुर्गा उसे जाने का इशारा करती है भीखा चलने के समय दुर्गा को खड़ा-खड़ा देखता रहता है]

भीखा—बाई !

दुर्गा—जा भीखा, अफीम ले जा और पिताजी की सेवा कर !

भीखा—(आँखों में आँसू भर कर देखता रहता है) बाई !

दुर्गा—जा !

[भीखा मुड़-मुड़कर देखता जाता है और फिर बाहर निकल जाता है]

दुर्जनसिंह—तो तुम्हारे पिता ने तुम्हें अफीम के बहाने मेरे पास भेजा है क्यों !

दुर्गा—मैं स्वयं आई हूँ ।

दुर्जनसिंह—पिता के प्राण बचा कर अपना प्राण बेचने ! (दुर्गा चुप) तुम्हें शर्म न आई !

दुर्गा—तुम्हे यह सब कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है । पिता के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकते समझे ! मैं मौजूद हूँ । मुझ से जो इच्छा हो कहो ।

नाहरसिंह—ऐसे भी जगत में मनुष्य है जो लड़की को बेच कर अपना व्यसन पूरा करते हैं ।

शेरसिंह—मनुष्य कितना नीच है ।

दुर्गा—नीच. पापी दुष्टो, तुमने विश्वासघात करके अपने सरदार को हराया, अपने क्षत्रियत्व को कलंक लगाया ! आज तुम्हें मुँह खोलते लज्जा नहीं आती !

नाहरसिंह—क्षत्रियत्व और लज्जा की शिक्षा लेने अब हमें विजयसिंह के पास जाना पड़ेगा जिसकी लड़की पिता के प्राणों की रक्षा के बहाने..... ।

दुर्गा—(आगे बढ़ कर) चुप रहो ।

शेरसिंह—न मालूम कितने घाट का पानी पिया होगा । अहा हा ?

दुर्जनसिंह—मैं ऐसी लड़की से घृणा करता हूँ । कुलटा !

दुर्गा—मैं कुलटा हूँ, (आवेश में) मैं पापिन हूँ ! आज तुम्हें सब कुछ कहने का अधिकार है । मेरे पिता की सब सम्पत्ति छीन कर आज तुम्हें यह कहने का अवसर मिला है । मैंने पिता के प्राणों की रक्षा के लिए यह कुत्सित, जघन्य पथ स्वीकार किया है । क्या मैं उन्हें मर जाने देती ! जिसने मेरी रक्षा के लिए सर्वस्व दे दिया ! जिसने तुम्हारी वासना के लिए अपनी लड़की की आहुति नहीं दी ! जो आज परिस्थितियों से मजबूर हो कर अपृष्ट, अनाहूत, अनादृत हो कर वन में पड़ा है ! (आँखों में आँसु भर आते हैं) दुर्जनसिंह, मैं आज तुम्हारे वश में हूँ । तुम मुझे दासी बनाओ । मैं सब सहेँगी पर मेरे पिताजी को कुछ न कहो । (सिर झुका लेती है)

नाहरसिंह—त्रिया चरित्र जाने नहीं कोई शेरसिंह !

शेरसिंह—हाँ भाई ठीक कहते हो ।

दुर्जनसिंह—(हँस कर) नाहरसिंह, अपने बाप के प्राणों की रक्षा करने वाली ऐसी लड़की तुमने देखी है !

नाहरसिंह—आँसुओं में भीगे पलकों के नीचे स्त्रीत्व की चिर अभिलाषा छिपाए लज्जा और कुलीनता को तिलाँजलि देने पर ही ।

शेरसिंह—जिस के स्वर में दया और भीतर क्षमा है ऐसी लड़की को...

दुर्गा—एक कन्या का इतना अपमान मत करो दुर्जनसिंह !

दुर्जनसिंह—कन्या हो तब न ! पकड़ लो इस को !

दुर्गा—मैं कन्या नहीं हूँ ! यह सही है कि मैं तुम्हारे शत्रु की कन्या हूँ, जिसके वंश ने तुम्हारे पिता का अपमान किया, परन्तु केवल उसी अपमान ने तुम्हें कितना उत्तप्त और कितना पीड़ित किया है, ठीक इसी प्रकार मेरे पिता का भी मान अपमान है, उनकी कन्या का गौरव है; मेरा अपमान तुम्हारा और तुम्हारी कन्या का अपमान है, एक क्षत्रिय की कन्या का अपमान है दुर्जनसिंह ! हाय, यह कैसा जीवन है !

[विजयसिंह का प्रवेश, हाथ में अफीम का डिब्बा है । बाल बिखरे हुए,

फटे कपड़े, पंर कांटों से लोहलुहान । एक दम दुर्जनसिंह के पास आकर खड़ा हो जाता है ।]

पिताजी ! तुम्हारी यह दशा ! तुम यहाँ क्यों आए ! इन राक्षसों के पास क्यों आए !

[दुर्जनसिंह, नाहरसिंह और शेरसिंह स्तब्ध रह जाते हैं]

दुर्जनसिंह—(अट्टाहास करके) पृथ्वी गोल है । आज तुम मेरे वश में हो । अभिमान के चिरकंकाल, मैं चाहूँ तो तुम्हें पीस डालूँ (सोच कर) नहीं क्षत्रिय धोखे से किसी को नहीं मारता ।

[विजयसिंह वैसे ही पड़ा रहता है]

दुर्गा—उठो पिताजी ! हाय, मेरे कारण तुम्हें यह सब देखना पड़ा । दुर्जनसिंह, हम तुम्हारे आधीन हैं । जो चाहो करो । (धरती पर बैठ जाती है)

विजयसिंह—यह लो अपनी अफीम दुर्जनसिंह ! मेरी लड़की को छोड़ दो । मैं पापी हूँ, मुझे सजा दो । मेरा सब कुछ ले लो । मेरी लड़की को छोड़ दो । (दुर्जनसिंह के पैरों पर गिर पड़ता है ।)

दुर्जनसिंह—(प्रभावित हो कर) अरे यह क्या करते हो, उठो भाई, उठो । बहुत हुआ । मैंने जो कुछ किया उसके लिए मैं बहुत लज्जित हूँ । मुझे क्षमा करो । यह सब मेरा कुछ भी नहीं है । यह तुम्हारा ही है । आज से तुम मेरे बड़े भाई हो ।

विजयसिंह—यदि यही बात है तो मैं तुम्हें अपने हृदय की थाती, अपना सर्वस्व सौंपता हूँ । बोलो तुम्हें स्वीकार है !

दुर्जनसिंह—अपने बड़े भाई की सब बातें मुझे स्वीकार है ।

विजयसिंह—तो आओ, दुर्गा तुम भी इधर आओ (दोनों पास आ जाते हैं, विजयसिंह दोनों का हाथ एक दूसरे के हाथ में देते हैं) यह सब सम्पत्ति और हृदय की धरोहर मैं तुम्हें सौंपता हूँ । इसको ठुकराना मत भाई !

दुर्जनसिंह—यह सब सम्पत्ति आपकी है, मुझे तो यही बहुत है ।

विजयसिंह—नहीं, अब मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं है । मैंने बहुत देखा, बहुत पाया, बहुत जाना । ईश्वर तुम्हें सुखी करे, मैं ईश्वर की शरण में चला !

(एक दम बाहर चला जाता है) ।

नाहरसिंह, शेरसिंह—सरदार की जय हो ।

दुर्जनसिंह—आओ दुर्गा, तुम मेरे हृदय की रानी हो !

दुर्गा—आपकी बाँदी !

दुर्जनसिंह—अनायास मिलन !

[दुर्गा चुप]

नाहरसिंह—दो रियासतें ही नहीं मिलीं, दो चिर-शत्रु भी मित्र बन गए ।

दुर्जनसिंह—आजीवन के लिए । (बाहर बाजे बजते हैं, दम्पति मुसकराते हैं)

[पर्दा गिरता है]



वर-निर्वाचन

पात्र

के० पी० चौधरी	:	एक बैरिस्टर
शारदा	.	चौधरी की लड़की
मनमोहन	:	एक मुवक्किल

मुन्शी, चपरासी, बंरा आदि ।

समय—शाम के पाँच बजे

[एक कोठी के सामने का भाग । पोर्च के सामने कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर १५ × २० का कमरा । बाहरी भाग में गुलाब, मोगरा विलायती फूलों के गमले रखे हैं । बरामदे में दो स्टेण्ड रखे हैं । कमरे में तीन तरफ कानून की बड़ी-बड़ी पुस्तकों की आलमारियाँ सजी हैं । बीच में एक बड़ी मेज, कुछ फायलें, एक रिवाल्विंग शेल्फ और बड़ी कुर्सी । दरवाजे की ओर दो कुर्सियाँ, एक तरफ बड़ा काउच । ऊपर पंखा । पश्चिम की तरफ एक छोटी मेज पर कुछ और कागज रखे हैं । उसके पास मुन्शी के बैठने का स्थान उसके सामने एक छोटा सन्दूक । मुन्शी सब फायलें इधर-उधर रख रहा है । इस कोठी के मालिक मि० के० पी० चौधरी बैरिस्टर कुर्सी पर बैठे हैं और आई हुई चिट्ठियाँ देख रहे हैं । इनकी उम्र लगभग चालीस साल, मुँह चौड़ा, रंग साँवला, मूँछें साफ, विचारशील पर उतावले, आँखें चमकती हुई, विचारों से दृढ़ता टपकती है, चहरे पर विद्या का गर्व । शरीर पर काले सर्ज का सूट है । गले में टाई, आयरिश लट्ठे की कमीज भीतर से चमक रही है । चौधरी का मुन्शी सफेद लट्ठे की अचकन पहने है, धोतीसे पतली काली टांगें, दिखाई देती हैं । जिनमें कटा चमड़ा और चकते से दिखाई देते हैं ।]

चौधरी—(एक पत्र पढ़कर दूसरा फाड़ते हुए) आज मैं सात बजे तक कोई केस न देख सकूँगा मुन्शीजी ! कल के केस रात में देखने के लिए मेरी मेज पर रख दो । ओहो ! एकदम अनकल्चर्ड । भले आदमी, जरा पहले चिट्ठी नहीं भेजी ! टाइम इंपाइट कर लेना चाहिए था । विलायत में इतने दिन रहने पर भी इतनी बेतकलुफी ! खैर मिलना होगा । साढ़े पाँच बजे ! स्टुपिड, मुन्शी ! ओः बहुत काम है ! (सिगार पीते हैं)

मुन्शी—(पास जाकर) क्या दीनूबाबू का केस भी रख दँ हज़र !

चौधरी—(घूरते हुए) उसकी पैरवी कब है !

मुन्शी—परसों ।

चौधरी—परसों का केस कल ! कितनी बार तुम से कहा, दूसरे दिन का केस ही मेरे सामने आना चाहिए । जैसे-जैसे बूढ़े हो रहे हो बुद्धि भी गिरवी रखते जाते हो । ओह, बड़ा काम है ! (सिगार पीते हैं)

मुन्शी—(डरते हुए) हज़ूर, आपने ही तो फरमाया था वह बड़ा टेढ़ा केस है । कुछ दिन लगेंगे ।

चौधरी—हाँ, हाँ, वह बड़ा टेढ़ा मामला है । किन्तु इस समय ओह, बड़ा काम है । लोग तनिक भी नहीं सोचते । विलायत हो आने से क्या होता है । कल्चर, एटीकेट बिल्कुल अलग चीज है ! महेशप्रसाद सेठ की सुनवाई किस दिन होगी ?

मुन्शी—(लिस्ट निकालकर) आज से छठे दिन हज़ूर !

चौधरी—हाँ, हाँ (घड़ी देखता हुआ) बड़ा काम है । ठीक साढ़े पाँच । ड्राइवर से कहो मोटर तैयार करे । क्या सुन रहे हो ?

मुन्शी—बहुत अच्छा ! (जाता है)

चौधरी—(उठता हुआ) और देखो, (टहलता हुआ सिगार पीकर) देखो मुन्शी । शारदा को बुलाओ, अरे जल्दी करो ! (कदम तेजी से बढ़ने लगते हैं) डिप्टी कमिश्नर की पार्टी है ठीक साढ़े पाँच बजे । हाँ जाओ, क्या सुन रहे हो !

मुन्शी—आपने बुलाया था !

चौधरी—हाँ बुलाया था शारदा के लिए । जाओ । (मुन्शी भीतर के दरवाजे से निकल जाता है) चपरासी, चपरासी, (चपरासी आकर खड़ा हो जाता है) मोटर तैयार है ! शारदा कहाँ है ! शारदा ! ओ समय बहुत थोड़ा है । मुन्शी जी नहीं आए । बहुत जल्दी ! समझा, हाँ ! (घड़ी हाथ में लेकर) नहीं आई । शारदा, ओ शारदा ! चाहता था खुद बातचीत करूँ । बहुत तेज है । अब किसी तरह मैं शादी कर देना चाहता हूँ । आई० सी० एस० उसकी निगाह में कोई जँचता ही नहीं । करना ही होगा । (चिट्ठी फिर हाथ में लेकर पढ़ता हुआ)

[मुन्शी के साथ शारदा का प्रवेश, शारदा बैरिस्टर चौधरी की लड़की है। उम्र बीस साल, सुन्दर पतला शरीर, बोलने में तेज। धानी रंग की साड़ी पहने। ऊंची एड़ी का जूता, सिर खुला, बेगी कमर तक लटकती हुई। आँखों में चंचलता, ओठों में लिपस्टिक लगी है। चेहरे पर पाउडर, माँग टेढ़ी, एक हाथ में अंगरेजी की किताब।]

शारदा—(हैरान होकर) आप कहीं जा रहे हैं क्या ! हाँ मैं भी ! आप कहाँ जा रहे हैं बाबूजी ! आज बहुत अच्छा रहेगा। 'ए याँक एट आक्स फोर्ड' बहुत बढ़िया खेल है बाबूजी ! मैंने सुशीला से कह दिया है।

चौधरी—पगली मैं जरा जल्दी में हूँ। ओ: बहुत काम है तुम्हें मालूम नहीं (एक दम पास जाकर उसकी पीठ थपथपाते हुए) अभी साढ़े पाँच बजे जरा डिप्टी कमिश्नर की पार्टी में जाना है। हाँ, देखो।

शारदा—और मैं, मैं भी जा रही हूँ। अभी मुझे बहुत काम है। कपड़े बदलना है। आपने मुझे बुलाया था। ओ वण्डरफुल वुक ! क्या आपने इसे पढ़ा है ? शॉ भी खूब लिखते हैं। एनी जौन का करेक्टर ! अरे तो क्या आप जा रहे हैं ?

चौधरी—हाँ पार्टी में जाना है बेटी ! आज जुगलकिशोर साढ़े पाँच बजे आ रहा है। एक दम देखता हूँ चिट्ठी मेरी मेज पर पड़ी है। वह अभी विलायत से आया है। सुन्दर युवक है (पीठ थपथपा कर) हाँ, समझी ! सहारनपुर में मैजिस्ट्रेट के पद पर उसकी नियुक्ति भी हो चुकी है। ऐसा अवसर फिर हाथ न आवेगा शारदा ! चाय तुम पिला देना। मैं साढ़े छः बजे तक आ सकूँगा। बड़ा योग्य लड़का है। समझी !

शारदा—(कुछ सोच कर) लेकिन मुझे.....। हमारे कालेज में बड़ा मजा रहा आज। तो क्या मैं खेल देखने न जा सकूँगी ! मैं तो जाऊँगी बाबूजी !

चौधरी—बेटी, जुगल से जरूर मिलना है। वह बड़ा अच्छा लड़का है। (हार्न बजता है) ओ: मोटर आ गई। नहीं हो तो दूसरे शो में चली जाना मैं भी साथ चलूँगा। अच्छा जा रहा हूँ। ओ: (घड़ी देख कर) देर हो गई। (बाहर चला जाता है)

शारदा—एक दम हौरिवल ! हम स्त्रियों की भी क्या जिन्दगी है । मैं सिनेमा भी न देख सकूंगी । जुगलकिशोर आ रहे हैं उन्हें चाय पिलानी होगी, भला यह भी कोई बात है । सिली ! बाबूजी को भी कभी-कभी न मालूम क्या हो जाता है । मुंशी तुम यहाँ बैठो । हर्ज ही क्या है । (शीशे में देख कर) देखूंगी । अच्छा मुंशी, बैठो मैं अभी आई । (पीछे के दरवाजे से निकल जाती है)

मुंशी—(बस्ता सँभाल कर केस मेज के कोने में रखता हुआ) इन अमीरों के भी क्या चोचले हैं । बाप पूरब जाता है बेटी पच्छिम !

[चपरासी का प्रवेश]

चपरासी—इस घर की भी अजीब माया है !

मुंशी—(उधर देख कर) मैं अभी यही तो कह रहा था । सब अंग्रेजी की महिमा है ।

चपरासी—हम गरीबों की लड़कियाँ ऐसा करें तो नाक कट जाए ।

मुंशी—सूरत दिखाने लायक न रहें । जो देखे मुँह पर थूके ।

चपरासी—अभी दोपहर को किसी कालेज के लड़के के साथ हा हा हू हू होती रही । मकान सिर पर उठा लिया ।

मुंशी—वह सुरेश बाबू की लड़की भी साथ होगी । चौबीस साल की लड़की ! भला कोई ठीक है ? न मालूम यह संसार किधर जा रहा है । ब्याह हुआ होता तो तीन बच्चों की माँ होती अब तक ।

चपरासी—इन बड़े आदमियों के बड़े काम हैं ।

मुंशी—उस महादीन पंडित की लड़की की बात सुनी । बड़ी मुश्किल से उसके बाप ने कानपुर में सगाई ठहराई ! वहाँ किसी ने लड़के वाले से भाँजी मार दी कि लड़की अकेली घूमती-फिरती है । सिनेमा जाती है बस, बेचारे की लड़की की सगाई टूट गई ।

चपरासी—वही महादीन पंडित जो उस दिन लाला रामभजन के चौतरे पर रामायण की कथा बाँच रहे थे !

मुंशी—अरे वही तो जो कृष्ण का नाम लेने पर राम-राम कहो कहते

फिरते हैं ।

चपरासी—गरीब आदमी है बेचारा ।

मुन्शी—इसी सहारे राम का नाम मुँह से तो निकल जाए है । आदमी सच पूछो तो लाख रुपए का है । न जाने किस चुगलखोर ने बुराई कर दी ।

चपरासी—तो क्या वह सिनेमा गई भी थी !

मुन्शी—गौ है, गौ । वह क्या जाने सिनेमा किसे कहें है । उड़ा दी सो उड़ा गई । इधर ये हाल है ।

चपरासी—‘समरथ को नहीं दोस गुसाई’—तुलसीदास जी ने कहा है ।

मुन्शी—तुम ठीक कहते हो गीता में लिखा है—रुपए से बुराई भी अच्छी हो जाती है ।

चपरासी—गीता तो मैंने पढ़ी नहीं है रामायण पढ़ लेता हूँ । चीज बड़ी मुन्दर है (गाता है) आगे चले बहुरि रघुराई, ऋष्य मूक पर्वत नियराई । रामा हो रामा ।

मुन्शी—अरे चुप, अभी साहबजादी आई सो आई ।

चपरासी—कोई बुरा काम तो करें है नहीं । भजन करें हैं इस नौकरी के मारे नाक में दम है ।

मुन्शी—अच्छा देखो, मैं जरा बाहर जा रहा हूँ । सवा छः तक लौटूंगा साहब से पहले । (जाता है)

चपरासी—जाओ । गुनगुनाता है—

पराधीनता दुख भरी कटत न काटे रात ।

हा, स्वतन्त्रता कब को हूँ है पुण्य प्रभात ॥

[पुस्तक लिए नए ढंग की वेष-भूषा में शारदा का प्रवेश]

शारदा—मुन्शीजी ! रामू, मुन्शीजी कहाँ गए ? हाँ रे सुशीला का टेलीफोन आया था ?

चपरासी—जी हाँ, उन्होंने कहा है कि आज मैं सिनेमा देखने नहीं जाऊँगी । दिनेश बाबू से एक खास काम है । बीबीजी से कह देना ।

शारदा—(क्रोध से) अच्छा सुशीला नहीं जाएगी । दिनेश बाबू को खास

काम है। क्या काम होगा ? और उस सुशीला चुड़ैल को ! बहाना है। (किताब मेज पर पटक कर) रामू, बैरा से कहो साढ़े पाँच बजे एक आदमी की चाय है। सब तैयार रहे। जाओ। (जाता है) मैं उल्लू बनाई जा रही हूँ। जैसे मैं कुछ भी नहीं जानती। कुछ नहीं समझती। यही न ! दिनेश तेरा है। (क्रोध से टहलने लगती है) क्या है एक एम० ए० कालड़का। जरा खूबसूरत। बस और क्या ? मैं जुगलकिशोर बाबू से शादी करूँगी। आई० सी० एस०, सिटी मैजिस्ट्रेट। दिनेश, तुमने गुलाब को छोड़ कर गेंदा, बल्कि ढाक पसन्द किया। ओः दोपहर की बात भूल गए। (काऊच पर बैठ कर किताब लेकर पढ़ने लगती है, फिर बन्द करके) मैं यह सब नहीं कह सकती। (घड़ी में देख कर) जुगलकिशोर न मालूम कैसा होगा। बाबूजी बड़ी तारीफ करते हैं। आई० सी० एस० इंगलैण्ड रिटर्न। सुन्दर युवक। क्या दिनेश जैसा ! पर दिनेश भी तो कोई अच्छा नहीं है। कहीं भी मन नहीं लग रहा है। रामू, ओ रामू, कोई भीतर आवे तो फौरन भीतर भेज देना। (चपरासी भीतर आकर 'बहुत अच्छा' कहकर बाहर चला जाता है) शारदा कभी तस्वीर देखती है, कभी शीशे के सामने खड़ी होकर अपने सौन्दर्य पर फूल उठती है। फिर गाती है—

कौन जाने मन चला दिल प्यार किस से माँग लाया।

उदधि सो गहरी हिमालय शृंग सी अभिलाष लाया ॥

चल रही हूँ मैं न बैठूँगी न देगा बैठने दिल।

मैं जलूँगी खाक होगी आस जब तक खाक में मिल ॥

इस अनन्त अमा निशा ने हाय कितने दिल छुले हैं।

आज मेरे जागरण सब दीप माला से जले हैं ॥

[पच्चीस-छब्बीस साल का एक नवयुवक अपटूडेट फेशन में भीतर भाँकता है। सामने आते हुए उस युवक को शीशे में देखकर उसके रूप रंग पर एक दृष्टि डालती हुई चौंककर उसका स्वागत करने को आगे बढ़ती है।]

आगन्तुक—क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ !

शारदा—(अभिनय के ढंग पर घूमती हुई) आइए, आइए। बैठिए।

आगन्तुक—चारों ओर (एक नजर डालता हुआ) क्या चौधरी साहब !

शारदा—(कलाई की घड़ी की ओर देखती हुई) जी हाँ, जी हाँ, बैठिए । आते ही होंगे । ओः कितनी गर्मी है । चपरासी, चपरासी । (चपरासी अन्दर आता है) देखो पंखा चला दो ।

चपरासी—बहुत अच्छा (पंखा चलाकर एक ओर खड़ा हो जाता है)

शारदा—जाओ । वाहर जाओ । (आगन्तुक से) आप को आने में कोई कठिनाई तो ?

आगन्तुक—जी नहीं ! (जरा उठता हुआ) मैं फिर दर्शन करूँगा । चौधरी साहब के आने पर ।

शारदा—(आगन्तुक के सोफे की सीट के पास दूसरी सीट पर बैठती हुई) क्यों बैठिए वे अभी आते ही होंगे । आराम से बैठिए ।

आगन्तुक—बैठा हूँ । चौधरी साहब से

शारदा—कह तो रही हूँ अभी आते होंगे । (स्वगत) अजीब आदमी है । इतना संकोच-शोल । लड़कियों को भी मात कर दिया । देखने में दिनेश से किसी तरह कम नहीं है । (प्रगट) मनुष्य का स्वभाव कितना परिवर्तनशील है । असल में मनुष्य के सम्बन्ध में कुछ भी ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता । साहित्य में सब करेक्टर एक से एक सुन्दर और सब अलग-अलग ।

आगन्तुक—इसमें क्या सन्देह है ! (नीची नजर करके) पुरुष की ही क्या स्त्री की भी यही दशा है ।

शारदा—स्त्री और सब हो सकती है, विश्वासघातिनी नहीं । किन्तु पुरुष में हृदय को समझने की क्षमता वैरा, वैरा, चाय लाओ ।

[आगन्तुक शारदा की ओर देख कर हैरानी से चुप हो जाता है]

शारदा—आप समझते होंगे मैं स्त्रियों की तरफ से वकालत कर रही हूँ । यह बात नहीं । रोज ही हम लोग क्लास-रूम में देखती है । लड़के कितने गँवार होते हैं । ऐसे घूरते हैं मानों साबित निगल जाएँगे । (उत्सुकता से उसकी ओर देखती है)

आगन्तुक—(ऊपर निगाह उठा कर) इस दिशा में हम लोग पश्चात्य लोगों से बहुत पीछे है । (जब में हाथ डाल कर कुछ टटोलने लगता है)

शारदा—हियर यू आर ! आप बिलकुल सही कह रहे हैं। हमारे समाज को अभी बहुत कुछ आगे बढ़ना है। अब दो गाड़ियों में पैर रखकर नहीं चला जा सकता। हमें इस पुरानी सभ्यता को छोड़ना ही होगा। इस पश्चिमी सभ्यता के सामने आपको हार माननी होगी। इसके अतिरिक्त मनुष्य का दृष्टिकोण कितना बदल गया है। मनुष्य आज मनुष्य को नए दृष्टिकोण से पहचानने लगा है। हमारी सुन्दरता का माप-दण्ड भी तो निखर चुका है।

आगन्तुक—(ऊपर देखकर) जी !

[बंरा चाय की 'ट्रे' लेकर आता है और एक छोटी मेज सामने रख कर चाय रखता है और एक ओर खड़ा हो जाता है]

शारदा—(बंरे की तरफ देख कर) सब आ गया न !

बैरा—जी हज़ूर !

शारदा—जामो (जाता है) आइए चाय पीजिए। (चाय तैयार करती है) आइए।

आगन्तुक—(हाथ जोड़ कर) अभी पीकर आया हूँ। आप.....।

शारदा—इसमें संकोच की कोई बात नहीं, आइए न !

[आगन्तुक मजबूरी समझता हुआ प्याला हाथ में लेता है]

मैं यह मानती हूँ कि हमें समाज को बदलने के लिए रेवोल्यूशन (क्रान्ति) करना होगा। हमने आज तक स्त्री पुरुष को जिस ढंग से देखा है, उसे बदलना होगा। हवाई जहाजों के समय में बैलगाड़ी और ऊंटों पर चलना मूर्खता है। (चाय पीती हुई नवयुवक की ओर देखने लगती है)

आगन्तुक—ठीक है। आपका कहना सही है। किन्तु क्रान्ति करना हमारे मध्यवर्ति समाज का काम नहीं है। जिस दिन यह भावना जन-साधारण में आगई, उसी दिन क्रान्ति होगी। क्रान्ति कई तरह की होती है परन्तु जहाँ तक विचार परिवर्तन का सम्बन्ध है और समाज को भलाई की ओर जाना है वहाँ तक क्रान्ति लाभदायक है। केवल क्रान्ति की भावना से क्रान्ति भयंकर है।

शारदा—इसके द्वारा हम लोग निश्चय ही एक सदुद्देश्य की ओर चलेंगे। मैं मानती हूँ जीवन एक खंडे के चारों ओर घूमना ही नहीं है उसमें विचित्रता,

विविधता की आवश्यकता है। (चाय पीती है) मैं डेस्डमोना के पातिव्रत्य में विश्वास नहीं रखती। मैं सीता चाहती हूँ तो दशरथ मुझे बिलकुल पसन्द नहीं हैं। राम के अच्छे होने पर भी उनमें कमजोरी थी। मैं बुराई दूर करके समता, स्वस्थता की ओर बढ़ना क्रान्ति का ध्येय समझती हूँ। (चाय पीती है)

आगन्तुक—आप सच कहती हैं, परन्तु इतना समझ लेना भी आवश्यक है कि मनुष्य व्यक्तिगत रूप से स्वयं कुछ भी नहीं हैं, वह पैतृक संस्कारों, समाज की मर्यादाओं, साम्प्रतिक, राजनैतिक परिस्थितियों और अपनी सीमित आकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब है। समाज का भी यही हाल है।

शारदा—ठीक है, वैसे देखा जाए तो सत्य तो सब में है। हाँ प्रेम के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं। मुझे तो यह चीज बहुत सुन्दर मालूम होती है और अजीब भी।

आगन्तुक—मैं स्वयं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। देखता हूँ कागज या इसी प्रकार की चीजों को जोड़ने में जो उपयोगिता गोंद की है। धातु के दो वर्तनों को जोड़ने में 'टाँके' की है यही मनुष्य और स्त्री को एक सतह में रख कर न टूटने देने के लिए प्रेम रूमी 'लहेस' की हो सकती है।

शारदा—खूब व्याख्या है। (हँसती है) पर गोंद, टाँका और लहेस तो उन दो वस्तुओं से पृथक् हैं न ! प्रेम अन्तर की चीज है।

आगन्तुक—अन्तर की होती हुई भी भिन्न तो है न। इसी के आधार पर दो विरोधी तत्त्व एक तीसरे तत्त्व की सृष्टि करते हैं।

शारदा—अपने जैसे की।

आगन्तुक—दिन और रात के संयोग से उषा और संध्या की उत्पत्ति है। प्रेम वस्तुतः भिन्न कोई वस्तु नहीं है वह एक आन्तरिक आकर्षण है जिससे संसार बनता है।

शारदा—दो में से एक ही जहाँ किसी को चाहता है दूसरा नहीं चाहता। वहाँ प्रेम कैसा होगा ?

आगन्तुक—वहाँ प्रेम नहीं सौन्दर्य का आकर्षण है, जो एकांगी है। यहा

बुराई की जड़ है। सौन्दर्य प्रेम का बाह्यरूप है। यद्यपि हैं दोनों हृदय की वस्तुएँ ही। जब दोनों साथ-साथ चलते हैं वहाँ हृदय का राज्य होता है, एकांगी में हृदय और मस्तिष्क का।

शारदा—(सोच कर मुस्कराती हुई) स्त्री के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

आगन्तुक—मुझे इस सम्बन्ध में कोई अधिक जानकारी तो है नहीं। परन्तु इतना जानता हूँ कि जीवन में श्वास की तरह इस संसार में स्त्री की सत्ता है। चाहे वैराग्य-मोक्ष की साधना में वह कोई ऊँचा स्थान न रख सके परन्तु संसार में उसकी सत्ता प्रकृति के सौन्दर्य से किसी प्रकार भी कम नहीं है। सुन्दरता और सौरभ में फूल का जो स्थान है, शरद-पूर्णिमा की रात में चन्द्रमा की किरणों का जो महत्त्व है, घन घोर बादलों में बिजली की चमक का जो आकर्षण है, वही सब इस संसार में स्त्री का है।

शारदा—वण्डरफुल आइडिया ! किन्तु हम लोग स्त्री को वैसा स्थान कहाँ देते हैं ! क्या सीता, द्रौपदी की दुःख कथाओं से इतिहास इन्कार कर सकता है ?

आगन्तुक—हिन्दुओं के आचरण की भूल को मैं स्वीकार करता हूँ परन्तु उन्होंने मर्यादा की दृष्टि से स्त्री को सदा ऊँचा माना है। जो मनुष्य सृष्टि का आदि कारण है, जो सृष्टि का समग्र सुख, सौन्दर्य, मूलसुख अपने प्राणों के साथ अनादिकाल से वहन करती आ रही है और जिसने मनुष्य की स्निग्धता, उसकी कला-प्रियता को सजीव बनाए रखा है, उसे हिन्दू हीन कैसे कह सकते हैं। कवि उदयशंकर भट्ट ने अपने 'विश्वामित्र' भावनाट्य में मेनका के मुख से नारी के सम्बन्ध में जो कहलवाया है उस पर ध्यान दीजिए तब आपको मालूम होगा कि नारी क्या है।

शारदा—उन्होंने क्या कहा है ?

आगन्तुक—जब उर्वशी स्त्री के सम्बन्ध में साधारण और तुच्छ विचार प्रकट करती है तब मेनका कहती है—

“नहीं नहीं यह कैसे कहती हो सखी
वह सत्ता है कोमल जग के तत्त्व की
और कल्पना सहज विधाता हृदय की,
रुचिर सहचरी रूप सुधा का प्राण है
मानव के नैराश्य-पुंज में दीप की
ज्योति शिखा है। नारी नर की चाहना।
यदि इस जग में नर है बुद्धि विवेक तो
नारी कोमल हृदय तन्तु की स्फुरणा।
यह मद का कादम्ब, प्रेरणा विश्व की
कान्ति, ज्योति, सौरभ की सुन्दर मूर्ति है।”

शारदा—बहुत सुन्दर—

आगन्तुक—उसी जगह मेनका अपने स्त्री रूप के प्रति कहती है—

“किरण चन्द्र में, लहर सरित में खेलती
कलिका में मृदुहास, पवन में मन्दगति,
हूँ फुहार में मेघ, वृष्टि में दामिनी—
चमक। चपल यौवन में मैं हूँ उग्रमद।
रति अनंग में, सुन्दरता में रूप हूँ।
रागों में ध्रुव, सुखद भैरवी रागिनी,
लय में हूँ आरोह, प्राण में आस हूँ।”

शारदा—हाउ व्यूटिफुल ! बहुत उम्दा। आपने तो बहुत अध्ययन किया है। हाँ, मैं इतना जानना चाहती हूँ क्या अकेले-अकेले जीवन पूरा नहीं हो सकता !

आगन्तुक—व्यक्तिगत रूप से यह सम्भव हो सकता है सामाजिक रूप से नहीं। समाज स्त्री और पुरुष के सम्मिलित प्रयत्न का ही नाम तो है।

शारदा—आपकी सब बातें युक्ति संगत और अद्भुत हैं।

आगन्तुक—(जेब टटोल कर कुछ चौकन्ना सा होता हुआ) क्या चौधरी

साहब के आने में कुछ देर है ! (उठता हुआ) मैं अभी आया अभी—(बाहर चला जाता है)

शारदा—विचित्र व्यक्ति हैं। सुन्दर और प्रतिभाशाली। विचारशील और मसखरे। (अचानक भीतर के रास्ते से चौधरी महाशय प्रवेश करते हैं)

चौधरी—कौन है सुन्दर और प्रतिभाशाली। विचारशील और मसखरा बेटी शारदा !

शारदा—(भँपती हुई) कुछ नहीं पिताजी ! बड़े योग्य है।

चौधरी—(कुर्सी पर बैठते हुए) चला गया क्या !

शारदा—नहीं, अभी किसी काम से बाहर गए हैं। बड़े अच्छे आदमी हैं।

चौधरी—मैं तो पहले ही जानता था। ऐसे व्यक्ति बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। योग्य और सम्पन्न।

शारदा—असाधारण पाण्डित्य है।

शारदा—(प्रसन्न होकर) संस्कृत में एक मुहाविरा है (रत्नं समागच्छतु कांचनेन; हंसकर) मेरी बेटी कौन साधारण है ?

शारदा—चुप भी रहिए। (मुँह फेर लेती है)

चौधरी—मेरी इच्छा आज पूर्ण हो गई। मैं इसी पक्ष का हूँ कि कन्या को वर-निर्वाचन में स्वतन्त्र होना चाहिए। हमारे यहाँ प्राचीन काल में भी तो वर-निर्वाचन अर्थात् स्वयंवर की प्रथा थी। कन्या का जीवन एक तरह से परतन्त्रता का जीवन है यदि उसे अपने विचारों का आदमी मिल जाए तो सोना और मुगन्ध है। ओः बहुत काम है। मुन्शी कहाँ है ?

[आगन्तुक का प्रवेश]

शारदा—लीजिए वे आ गए।

[आगन्तुक चौधरी को प्रणाम करके कुर्सी पर बैठने लगता है चौधरी उठकर हाथ मिलाते हैं और ध्यान से देखने लगते हैं]

चौधरी—तुम (आश्चर्य से) तुम्हारी सूरत तो... क्या आप जुगलकिशोर ही हैं ! आप कहाँ से आए ?

आगन्तुक—क्षमा कीजिए मैं तो एक मुवक्किल की हैसियत से आपसे

सलाह लेने आया हूँ। मेरा नाम तो मनमोहन है। मेरे पिता के अस्सी हजार रुपए कुछ दुष्टों ने जाली प्रोनोट लिखकर.....।

चौधरी—बस कीजिए। बस और न बोलिए। मैं समझ गया हूँ।

आगन्तुक—(भेपकर) उसी सम्बन्ध में आपसे परामर्श करना है।

शारदा—(हैरानी से) क्या आप जुगलकिशोर नहीं हैं? क्या आप बाबू जुगलकिशोर नहीं हैं जो इंग्लैंड से अभी आए हैं। कहिए, कहिए। बोलिए? (एक दम सिर पकड़ कर बैठ जाती है)

[चपरासी का प्रवेश]

चपरासी—हज़ूर, जुगलकिशोर बाबू का चपरासी यह पत्र दे गया है।

चौधरी—(तपाक से पत्र खोलकर पढ़ता है) शारदा, जुगलकिशोर मोटर एक्सीडेंट के कारण आज न आ सका। (सिर लटका कर बैठ जाता है)

आगन्तुक—मुझे क्या आज्ञा है!

चौधरी—आप कल प्रातःकाल आइए। मुझे इस समय फुर्सत नहीं है। मेरा सिर चकरा रहा है।

आगन्तुक—जो आज्ञा। (जाता है)

चौधरी—(उसे जाते हुए देखता रहता है) शारदा!

शारदा—(उसे देखती हुई) मिता जी! क्या फिर मैं इन्हीं से.....।

चौधरी—चुप रहो! यह निर्वाचन मुझे पसन्द नहीं।

[पटाक्षेप]



प्रथम-विवाह

(प्रारम्भिक आर्य-संस्कृति का चित्र)

पात्र-परिचय

काद्रवेय	:	परिवार-पति
काद्रवेयी	:	जन-नायिका
ज्येष्ठकाद्र	:	काद्र परिवार
मध्यमकाद्र	:	” ”
कनिष्ठकाद्र	:	” ”
मध्यमाकाद्रा	:	युवती
उषा काद्रा	:	युवती
विश्व पंचजन	:	पंचजन-परिवार
रुद्र पंचजन	:	” ”
वरुण पंचजन	:	पंचजन-परिवार-पति

[स्थान हिमालय की उपत्यका, देवदार की लकड़ी और भोजपत्र से छाया हुआ एक कुटीर, बीच में धूम्राँ निकलने का एक छोटा-सा मार्ग । कुटीर के बाहर प्राग जल रही है । उसके चारों ओर भोजपत्र के आसन बने हैं । कुटीर के बाहर का भाग समतल है । जिस समय की हम कथा लिख रहे हैं, उससे पूर्व मनुष्य जाति घूमती फिरती थी । कभी एक स्थान पर और कभी दूसरे स्थान पर । गोत्रों, परिवारों के रूप में पशुओं के साथ कभी-कभी ये दो मास के लिए ठहर भी जाते थे । इस समय तक कन्द-मूल के साथ ये लोग पशुओं को मार कर खाना भी सीख गए थे । पहले-पहल वृक्षों की शाखा, तत्पश्चात् पत्थर आदि के परशु, खाँडे बनाने लगे थे । भोजपत्र और चमड़े का परिधान ही प्रधान रूप से व्यवहार में आता था; क्योंकि मनुष्यों के रोम धीरे-धीरे कम होते जा रहे थे । वे एक तरह से इन्द्रियों की वृत्ति को समझने लगे थे । स्त्री-पुरुष के भेद तथा सर्दी के कारण उन्होंने वस्त्र धारण करना स्वीकार कर लिया था । तात्पर्य यह कि नंगा रहने में लज्जा-जैसी भावना का उनमें उदय हो गया था । राग-द्वेष नाम की दोनों भावनाओं में परस्पर सद्भावना-राग का प्राधान्य था, और द्वेष-क्रोध की भावना पशुओं को मारने और उनसे अपने को बचाने में थी । कभी-कभी पुरुषों में परिवार की जन-नायिका के कारण संघर्ष हो जाता था । यही नहीं, नायिका भी अपनी रुचि से विवश होकर कभी एक को और कभी दूसरे को प्रेम की दृष्टि से देखने लगती थी । इससे पुरुषों में जहाँ स्त्री का प्रेम पाने की तीव्रता उत्पन्न हो रही थी वहाँ दूसरे के प्रति वैमनस्य भी झलकने लगता था । फिर भी उस समय तक मनुष्य जाति अपने हृदय के भावों को छिपाने, झूठ बोलने तथा छल करने की प्रक्रिया नहीं जानती थी । उस समय स्वाभाविक गति से मनुष्य का विकास हो रहा था । इन्द्रियाँ भूख, प्यास, नींद की तरह उत्पन्न होने पर तृप्ति पाती थीं । एक बात और, मनुष्य अनादि काल से सुरा-सोम, मँरेय, मधुमद आदि न जाने कैसे-कैसे मद पीने का आदि हो रहा था । उस समय भी इसका काफी

प्रचार था। शहब की सुरा उस समय बनाई जाती थी, ब्राक्षा सुरा भी उस समय थी, इसने मनुष्य जाति को भड़काने, उत्तेजित करने में अधिक सहायता दी, अन्यथा उसके विकास में कदाचित् इतनी शीघ्रता न आती। हमारा आशय इससे इतना ही है कि मद ने उसकी इन्ग्रियों को उत्तेजित किया। पुरुषों के शरीर गोरे और दृढ़ थे। मांस पेशियाँ उभरी हुई, सुते हुए शरीर कठोर और सुन्दर, कमर में चमड़ा या भोजपत्र का परिधान, शेष शरीर खुला हुआ। स्त्रियाँ भी वैसे ही परिधान में, किन्तु चर्म का उत्तरीय, जिससे भीतर की तरफ भेड़ों के बाल और बाहर की तरफ चमड़ा।

समय—सन्ध्या, सूर्यास्त से कुछ पूर्व। वृद्ध काद्रवेय, कन्धे पर गौ की बछिया, जो थोड़े समय पूर्व बन में पैदा हुई है, लादे आ रहा है। उसके पीछे जन-नायिका काद्रवेयी लकड़ी का गट्ठर लिए चली आ रही है। उसके पीछे उसकी तेरह साल की लड़की है, उसके सिर पर भी कन्द खण्ड है। काद्रवेय बछिया को आग के पास लाकर खड़ा कर देते हैं। काद्रवेयी लकड़ी और लड़की कन्द उठाकर कुटीर के एक कोने में रख देती हैं। काद्रवेयी कन्दखण्डों को एक-एक करके आग में डालती है। लड़की चमड़े का मशक उठा कर बाहर चली जाती है। वृद्ध आग से हाथ सेक कर बछिया के शरीर पर फेरता हुआ।]

काद्रवेय—तूने सुना, काद्रवेयी ?

काद्रवेयी—क्या ?

काद्रवेय—ज्येष्ठकाद्र कह रहा था, हम अब यहीं रहेंगे।

काद्रवेयी—क्यों ?

काद्रवेय—इसलिए कि घूमते रहना व्यर्थ है। एक जगह रहने से ठीक होगा। कृषि करेंगे। सब-कुछ बिगड़ा जा रहा है, काद्रवेयी, हम लोग सदा से घूमते रहे हैं, जिस दिन घूमना छोड़ देंगे, उस दिन घूमना न जाने कैसे होगा। मैं बार-बार कहता हूँ, अब आगे बढ़ो, मुझसे तो अब एक जगह रहा नहीं जाता, दिन भर बार-बार वही देखते रहना, वही सरित, वही पर्वत, वही भूमि, वही सब-कुछ।

काद्रवेयी—(चमड़े का परिधान सीती हुई। पहले नोकदार लकड़ी से छेद

करती है, फिर चमड़े का डोरा पिरोती है) यह तो बुरा है, काद्रवेय ! रोज नया दिन आता है, नई रात्रि आती है, नया शशि उगलता है, सब नया-नया । फिर हम क्यों एक ही स्थान पर रहें ?

काद्रवेय—मध्यमकाद्र भी यही कहता है, और कनिष्ठ भी यही ! उषा और मध्यमा क्या चाहती हैं ?

काद्रवेयी—न जाने, पूछा तो मैंने नहीं है । पर उनके चाहने से क्या होता है, जन-नायिका तो मैं हूँ न, जो मैं चाहूँगी, वही होगा । काद्रवेय, जो तू चाहेगा, वही होगा ।

[काद्रवेय चुप रहता है]

काद्रवेयी—(सीना बन्द करके) जानती हूँ, काद्रवेय ! मुझे दिखाई देता है, जैसे हम अब तक रहते आए हैं, वैसे अब नहीं चलेगा । यदि द्वितीय काद्रवेय सिंह से लड़ते न मारा गया होता, तो आज ये क्या इतना सिर उठाते ? ये उसे मानते भी तो बहुत थे । ज्येष्ठ तो उसके लिए अब भी कभी-कभी रो उठता है, यही हाल और दोनों का भी है । मेरा विचार है, विचार ही नहीं निश्चय है कि पुत्र सब मध्यम काद्रवेय की सन्तान हैं, और उषा और मध्यमा तेरी सन्तान हैं । पर मैं तो सबकी हूँ न ? (फिर सीती है)

काद्रवेय—हाँ, सो तो है ही, (हँसता है, काद्रवेयी कन्द निकालकर काद्रवेय को देती है और आप भी खाती है । काद्रवेय पास ही कोने में रखे चर्म-कादम्ब से अषक में मद निकाल कर पीता है ।) तू भी पिएगी ? ले । (देता है)

काद्रवेयी—(पीती हुई एकदम उठकर) देखूँ, मेरेय हुआ !]

काद्रवेय—मेरेय सुरा मुझे अच्छी लगती है । शरीर में नई शक्ति आ जाती है । ऐसा लगता है, मैं इस समय दो-दो सिंहों से लड़ सकता हूँ । पर जाने क्यों, मेरे सिर के केश श्वेत होते जा रहे हैं, दाढ़ी भी ।

काद्रवेयी—फिर भी तू मुझे, अच्छा लगता है, सभी मुझे अच्छे लगते हैं । कभी-कभी उषा और मध्यमा काद्रा को देखकर लगता है जैसे ये मेरी होती हुई भी मेरे लिए अनिष्ट हैं ।

काद्रवेय—क्यों ? वे भी तो तेरी तरह सुन्दर हैं ।

काद्रवेयी—बस, यही, यही तो है, जिससे मैं कभी-कभी उन पर क्रोध कर बैठती हूँ ।

काद्रवेय—किन्तु क्रोध करने से क्या वे सुन्दर न लगेंगी ? उनका वक्षस्थल कितना पुष्ट होता जा रहा है और रोम-राजी बढ़ती जा रही है, यही शोभा के लक्षण हैं, काद्रवेयी ! किन्तु मैं सोचता हूँ, यह कृषि क्या होती है ? पृथ्वी माता का उदर फाड़ कर आहार लेना क्या भली बात है, वैसे ही हम को किस बात का अभाव है ? यह गोत्र वाले न जाने क्या-क्या कर रहे हैं । उसे वे अन्न कहते हैं ।

काद्रवेयी—हाँ, उसे वे अन्न कहते हैं, अन्न की क्या आवश्यकता है, काद्रवेय ?

काद्रवेय—कहते हैं, अन्न ही हमारा जीवन है । सर्वथा नई बातें सुन रहा । अब तक जो हम लोग खाते रहे हैं वही क्या हमारे जीवन के लिए नहीं था ? उषा नहीं आई ?

काद्रवेयी—कभी-कभी सोचती हूँ, क्या सोचती हूँ, बताऊँ ? मैं सोचती हूँ, यदि मैं ही होती उषा और मध्यमा काद्रा न होतीं, तो कैसा होता ? न जाने क्यों कभी-कभी मेरा ऐसा विचार हो जाता है ।

काद्रवेय—(रुककर) न जाने, क्यों तू ऐसा सोचती है, मैं तो कुछ भी नहीं सोचता । मैं सोचता हूँ, पशुओं से लड़ने के लिए यह आवश्यक है कि हमारा परिवार बड़ा हो । हमने दो व्यक्तियों को पिछले दिनों में खो दिया—मध्यम और कनिष्ठ को । हाँ, उस समय मुझे कभी-कभी लगता था, यदि वे दोनों कहीं चले जाएँ तो कैसा रहे ? सो क्या जाने मेरे सोचने से ही वे चले गए । न जाने मैंने ऐसा क्यों सोचा । पृथ्वी को सिर झुकाकर अब मैं कई बार कह चुका हूँ कि अब मैं वैसा नहीं सोचूँगा । तू भी वैसा न सोच काद्रवेयी !

काद्रवेयी—अच्छा (सोती है) ।

उषा—(जल लेकर आती है और एक कोने में रखकर) सब लोग आ रहे हैं, उनके साथ और भी हैं ।

दोनों—कौन-कौन, दुहिता ?

उषा—दूसरे गोत्रज । देखो, वे आ रहे हैं । दूध दुह लिया माँ ! अच्छा मैं दुहती हूँ ।

[दोनों माँ बंटी गाय, बकरियों का दूध दुहने बाहर चली जाती हैं । काद्रवेय मंरेय निकाल कर पीता रहता है इसी समय तीनों काद्र, दो गोत्रज और उसके साथ एक कुमारी आते हैं । 'द्यावाज्य पृथ्वीजय' की आवाज लगती है ।]

काद्रवेय—आओ, आओ नए गोत्रज, स्वागत !

[सब के हाथों में बड़े-बड़े वंश तथा कर्करी हैं ।]

ज्येष्ठकाद्र—देखो, ये नए गोत्रज हैं, हमारे पड़ोसी पंचजन ।

काद्रवेय—पंचजन क्या, ज्येष्ठकाद्र ?

नया गोत्रज—हम लोगों का परिवार 'पंचजन' कहलाता है, काद्रवेय ! बहुत दिनों से हम लोग यहीं हिमालय की उपत्यका में रहते हैं । हम लोग ब्रीहि-कृषक हैं ।

काद्रवेय—ब्रीहि-कृषक मैं समझा नहीं ?

नया गोत्रज—शालि एक प्रकार का धान्य होता है, उसी को हम लोगों ने आहार बनाया है । आगे-आगे बढ़ते जाओ, तुम्हें नई लहलहाती ब्रीहि की कृषि दिखाई देगी—और गोधूम की भी ।

काद्रवेय—इस स्थल में आए मुझे चार शुक्लपक्ष बीत गए, सम्भव है, अधिक बीते हों, मैंने देखा, यहाँ के लोगों ने अपनी प्राचीन प्रथाओं को तोड़ दिया है । हम लोग सदा घूमते रहते हैं, तुम लोग एक स्थान पर बस गए हो । हम कन्द-मांस खाते हैं, तुमने अन्न उत्पन्न करना प्रारम्भ कर दिया है । सब नई-नई बातें सुनता हूँ, आतर !

दूसरा गोत्रज—नया-नया ज्ञान, नया-नया दिन, नई-नई रात्रि, नया-ही-नया तो है, काद्रवेय !

काद्रवेय—हम लोग नई पृथ्वी देखना चाहते हैं, एक स्थान पर रहकर तो नया नहीं हो सकता, पंचजन ? नया देश देखो । जैसे दिन का देव घूमता रहता है, क्यों न हम लोग भी चलते रहें ? नदी चलती है, भरने चलते हैं, रुक जाना

बुरा है, पंचजन !

प्रथम गोत्रज—हाँ, रुक जाना बुरा है; किन्तु सोचकर चलना ही अच्छा है। हम लोग अब तक व्यर्थ ही भ्रमण करते रहे हैं। वस्तुतः हमारे पूर्वजों ने एक जगह स्थिर होने के लिए ही भ्रमण किया था। जैसे दिन चलकर सप्ताह में समाप्त हो जाते हैं और सप्ताह मास में, उसी तरह हम लोगों ने यहाँ निवास करने का निश्चय किया है, काद्रवेय !

दूसरा गोत्रज—देखते नहीं हो, कितना सुन्दर है सब कुछ।

ज्येष्ठकाद्र—वस्तुतः पिता काद्रवेय ! मेरा यहाँ बहुत मन लगता है। हाँ, तुम ने इस गोत्रज को देखा ? देखा यह।

काद्रवेय—देख रहा हूँ ज्येष्ठकाद्रा ! क्या इधर और लोग भी रहते हैं ?

प्रथम गोत्रज—मैं गोत्र नहीं जानता, सुनते हैं हम लोग पुराने समय से इसी तरह चलते, ठहरते पूर्व से चले आ रहे हैं। यह भी कहते हैं कि हमारा वंश पुराना है, उसका एक भाग मेरा परिवार है।

द्वितीय गोत्रज—अच्छा तो है, रहो, यहीं रहो। कृपि करो, बहुत सुन्दर भूमि है। मेरे पिता को यह भाग प्रिय है काद्रवेय ! मुझे भी और मेरे इस आतर को भी।

काद्रवेय—अच्छा ! यह पहला ही अवसर है कि मैंने जीवन में दूसरे मनुष्यों को देखा है। मैं तो सदा वनों में, नदी के तटों पर इसी प्रकार परिवार के साथ घूमता रहा हूँ। एक बार एक मनुष्य मिला था, उसने इस (उषा की ओर संकेत कर) का नाम उषाकाद्रा रख दिया। तब से हम में भेद हो गया है, नहीं तो अब तक हम लोग ज्येष्ठ, मध्यम, कनिष्ठ के नाम से एक-दूसरे को पुकारते रहे हैं। मुझे यह अच्छा नहीं लगा।

ज्येष्ठकाद्रा—नाम तो पहिचानने के लिए रखा जाता है। इसका (नई गोत्रजा, का) नाम विश्वावारा पंचजन है, मुझे प्रिय है।

प्रथम गोत्रज—मेरा नाम विश्व पंचजन है। इसका (दूसरे की ओर संकेत कर) नाम रुद्र पंचजन है। हम लोग पंचजन हैं न।

[काद्रवेयी और उषाकाद्रा दूध की मशक भर कर आती हैं]

काद्वेयी—(आश्चर्य से) इतने जन ! तुम लोग कहाँ से आए ?

गोत्रज—(सब एक साथ) हम पास ही रहते हैं ।

काद्वेयी—अच्छा, बहुत अच्छा है । मैंने बहुत दिनों के बाद इतने व्यक्तियों को देखा । मेरे मध्यम और कनिष्ठ काद्वेय जब से मरे हैं तब से यहाँ आकर इतने मनुष्यों को परिवार में देख रही हूँ । बैठो, तुम लोग तो बड़े सुन्दर हो ।

उषाकाद्रा—(प्रथम गोत्रज से) आज तुम मेरे साथ नृत्य करना, (उसका हाथ पकड़ लेती है ।)

मध्यमाकाद्रा—मैं तुम्हारे साथ (द्वितीय गोत्रज के साथ) नृत्य करूँगी, आज बहुत सुन्दर होगा ।

ज्येष्ठाकाद्रा—मैं विश्वावारा के साथ नृत्य करूँगा ।

मध्यम और कनिष्ठ—नृत्य हमें प्रिय नहीं है, हम दुन्दुभि बजाएँगे ।

[चन्द्रमा निकल आता है । काद्वेयी सब को बैठ कर कन्व देती है और क्षीर-क्षपक पिलाती है : इसके बाद काद्वेय मंरेय सुरा सब को देता है । इसी बीच खाते-खाते लोग 'हो-हो' करके गाने लगते हैं । गोत्रज कर्करी (बंशी) बजाते हैं ; मध्यम और कनिष्ठ काद्र दुन्दुभि बजाते हैं । सब नाचते हैं । नाचते रहने पर 'हो-हो' की ध्वनि से सारा प्रदेश गूँज उठता है । हो-ओ ओ हो इ हो ही हो इ बस, यही उदात्त-अनुदात्त युक्त स्वर है । इसे बार-बार दुहराए जाते हैं । कभी कभी दुन्दुभि रोक केवल कर्करी ही बजती है । इसी प्रकार नाच कर सबके बँठ जाने के बाद वे फिर मंरेय पीते हैं, इसी समय—]

विश्वपंचजन—काद्वेय, मुझे आज्ञा हो, मैं मध्यमा काद्रा से विवाह करना चाहता हूँ, यह मुझे प्रिय है ।

काद्वेय-काद्वेयी—पाणिग्रहण कहो आतर, विवाह हम नहीं जानते । विवाह क्या होता है ? यह नई बात है ।

विश्वपंचजन—हमारे प्रपितामह वरुण पंचजन की आज्ञा है कि प्रत्येक युवक युवती से विवाह के बिना नहीं मिल सकता । (काद्वेय-परिवार के लोग आश्चर्य से चुप रहते हैं ।) विवाह का अर्थ है उस युवक का केवल

विवाहता युवती के साथ रहना । वह और किसी के साथ नहीं रह सकता ।

काद्रवेयी—नहीं, यह नहीं हो सकता । यह नई बात हमारे परिवार में नहीं हो सकती । इसका अर्थ तो यह हुआ कि मध्यमा इन काद्रों के साथ नहीं रह सकती । यह नहीं हो सकता काद्रवेय !

काद्रवेय—नहीं, ऐसा नहीं होगा । मेरे परिवार का नाश हो जाएगा । नहीं भातर ।

मध्यमाकाद्रा—मुझे विश्वपंचजन प्रिय लगता है, काद्रवेयी माँ ! मैं और कहीं नहीं रह सकती । मैं उसी के साथ जाऊँगी ।

काद्रवेय—मैं सब नई-नई बातें सुन रहा हूँ । क्या इस प्रदेश में आने से हम लोग अपनी पुरानी चली आई प्रथा को तोड़ देंगे ?

ज्येष्ठकाद्र—अब तक हम लोग अकेले परिवार के साथ रहते थे । यहाँ हमारी तरह के बहुत से परिवार रहते हैं । इन चार पक्षों में मैंने घूम-घूमकर ये परिवार देखे हैं । कितने सुखी हैं ये । कितने सम्पन्न हैं ये । घूमते रहना हमको स्वीकार नहीं है । वरुण पंचजन के पास बैठ कर मुझे बहुत-सी नई बातें ज्ञात हुई हैं । हम मिल कर एक-दूसरे की सहायता कर सकते हैं । हमें आगे बढ़ना है ।

काद्रवेय—आगे बढ़ना है, तो बढ़ो । चलो, आज ही हम लोग सब लेकर चलते हैं ।

विश्वपंचजन—आगे बढ़ने का अर्थ उन्नति करना है, काद्रवेय, घूमना नहीं ।

काद्रवेय—हमको ज्ञान की क्या आवश्यकता है ? हमारे पास क्या नहीं है ?

ज्येष्ठकाद्र—हम देवों के बारे में कुछ नहीं जानते । वरुणपंचजन कह रहे थे सूर्य हमारा देव है, चन्द्रमा हमारा देव है, पृथ्वी हमारी देवी है, यावा हमारा देव है ।

काद्रवेय—सूर्य और चन्द्रमा हमारे देव हैं, नई बात है ।

ज्येष्ठकाद्र—हम लोग भी किसी गोत्र में मिल कर रहेंगे । वह हमारी रक्षा करेंगे । हम लोग नए वस्त्र बनाएँगे । मैंने एक गोत्र के मनुष्यों के पास फेंककर मारने वाले अस्त्र देखे हैं । क्या कहते हैं उनको, विश्व ?

विश्व—बाण ।

ज्येष्ठकाद्र—वही हमको चाहिए । कृषि के द्वारा जो अन्न उत्पन्न होगा, उसे हम खाएँगे । उसका स्तुप् हमारे ये पशु खाएँगे । कितना सुख होगा, पिता काद्रवेय ! यह देखो, यह अन्न मैं लाया हूँ (थोड़ा सा निकालकर दिखाता है) । सब लोग आश्चर्य और उत्सुकता से देखते हैं) खाकर देखो । (काद्रवेय का परिवार खाता है ।)

सब—सुन्दर है । हम और भी खाएँगे ।

मध्यमाकाद्रा—इन परिवारों के घर कितने सुन्दर हैं । इनके पास चर्म-परिधान भी तो सुन्दर हैं । मैं विश्व के परिवार में रहूँगी, काद्रवेयी !

काद्रवेयी—तू क्या मुझे छोड़ कर चली जाएगी, काद्रा ? कल उषा भी चली जाएगी इस तरह तो फिर हम लोगों का परिवार समाप्त न हो जाएगा ? मैं बूढ़ी हूँ, मैं कहाँ तक तुम लोगों का निर्वाह कर सकूँगी ? काद्रा ?

ज्येष्ठकाद्र—मैं विश्वावारा के साथ विवाह करूँगा न ? यह मुझे प्रिय है, माँ !

काद्रवेय—इस अदल-बदल से तो यह अच्छा है कि अपने-अपने व्यक्ति अपने ही घर में रहें ।

[ज्येष्ठ को इसका उत्तर नहीं सूझता, चुप रह जाता है ।]

विश्व पंचजन—वरुण पंचजन कहते हैं कि एक परिवार की कन्या उसी परिवार में नहीं रहनी चाहिए । वे तो एक गोत्र की कन्या का उस गोत्र के ही युवक से विवाह करने के पक्षपाती भी नहीं हैं ।

काद्रवेय—सब नया ही नया, आतुर कैसे होगा ? मैं नहीं जानता, मैं तो इस प्रदेश में आकर भूल सा गया हूँ । विवाह नया शब्द है, नई बात है, कृषि भी नई बात है । काद्रवेयी, यह सब क्या हो रहा है ?

काद्रवेयी—यह एक और भी कठिनाई है, उषा जा रही है, मध्यमा जा रही है । एक और विश्वावारा आ रही है । ये पुत्र न जाने क्या करने जा रहे हैं, काद्रवेय !

ज्येष्ठकाद्र—नया कुछ भी नहीं है, वरुण पंचजन कहते हैं, हम लोग सदा

इस तरह नहीं रह सकते। जहाँ ठहरेंगे, वहीं हमारा समाज बनेगा। हमें उस समाज के लिए अपने को तैयार करना होगा। लड़ाई-भगड़े से बचने के लिए यह आवश्यक है कि परिवार की कन्या दूसरे परिवार में जाए। इस तरह आपस से प्रेम बढ़ेगा, समाज सुदृढ़ होगा।

विश्वपंचजन—पिछले दिनों हमारे परिवारों में युवक दूसरे परिवारों की कन्याओं को भगाकर लाते रहे हैं। वरुणपंचजन इसका भी विरोध करते हैं। इससे विरोध बढ़ता है, युद्ध होते हैं। इसलिए वरुण ऐसा कहते हैं। अब प्रायः परिवारों में दुहतिर को भगा कर लाने की प्रथा भी बन्द हो गई है।

उषा०—मुझे यह अच्छा लगता है, काद्रवेय ! उस दिन मैं मध्यमा के साथ एक गोत्र में जा पहुँची। उनका स्थान मुझे अच्छा लगा, वे लोग घर बना कर रहने लगे हैं ! अहो ! कितने सुन्दर हैं यहाँ के पुरुष !

मध्यमा०—चलते रहने से हम थक गए। एक ही परिवार के लोगों को देखते हम थक गए हैं।

कनिष्ठ०—मुझे यह सब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जो जाना चाहता है, जाए, मैं तो घूमना चाहता हूँ। मैं पिता काद्रवेय के साथ ही रहूँगा।

मध्यम०—मैं चाहता हूँ, जो होता है, उसे होने दो। विवाह बुरी बात नहीं है। मैं तो देख रहा हूँ, बराबर इसी तरह घूमते रहना कठिन है। हमारे घूमने की सीमा भी है। विश्वावारा के साथ ज्येष्ठकाद्र को मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ। एकान्त में, नदी के तट पर, चन्द्रमा से भरी रातों में वे दोनों बातें करते रहे हैं। मध्यमाकाद्रा भी विश्वपंचजन के साथ घूमती रहती है। ये चारों, मालूम होता है, रोके से रुक नहीं सकते। क्या प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुसार चलने का अधिकार नहीं है ?

काद्रवेयी—मैं कब चाहती हूँ कि ये विवाह न करें। करें, पर मैं तो काद्रवेय के साथ रहूँगी, मैं इसका साथ नहीं छोड़ सकती। भला यह विवाह होगा कैसे ?

काद्रवेय—जैसे भी हो, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मैं रोक भी नहीं सकता ! प्रत्येक को अपनी इच्छानुसार चलने का अधिकार है। मध्यमकाद्र

की बात मैं ठीक समझता हूँ, वही हम में सब से समझदार है। मेरे शरीर में अभी बल है। मैं अभी भ्रमण कर सकता हूँ, मैं एक स्थान पर नहीं रह सकता !

काद्रवेयी—मैं भी साथ चलूंगी।

कनिष्ठ०—मैं भी। हाँ, भ्रातर, विवाह करो, मैं देखूँ।

विश्वपंचजन—मैं वरुणपंचजन को लेकर आता हूँ। वे हमारे प्रदेश के परिवार के, सब से बड़े पुरुष हैं, वे ही विवाह कराएँगे। (जाता है)

उषा०—यदि उन्होंने न माना तो ?

ज्येष्ठ०—उन्हीं की आज्ञा से मैं विश्वावारा के साथ विवाह कर रहा हूँ।

[सब लोग बैठ कर मरेय मुरा पीते हैं। आग बराबर जल रही है]

मध्यम०—(ऊपर आकाश में चन्द्रमा को देखकर) यह चन्द्रमा कितनी दूर होगा, काद्रवेय ?

काद्रवेय—यह भी तो घूमता रहता है, मध्यम !

कनिष्ठ—भला, इस पृथ्वी का कहीं छोर भी होगा ?

काद्रवेय—यह पृथ्वी हमारे घूमने के लिए बनाई गई है। यदि हमको एक जगह स्थिर होकर रहना होता, तो यह छोटी होती।

मध्यम०—बड़ा विचित्र है। दिन में सूर्य निकलता है, रात को चन्द्रमा, क्या रात्रि को सूर्य नहीं निकल सकता ? नहीं, यह नहीं हो सकता। रात्रि को सूर्य निकलता तो वह रात्रि ही क्यों होती ? मैं भी कितना भ्रान्त हो गया। और ये तारे। क्या यह भी दूर होंगे ? अवश्य ये चन्द्रमा से भी दूर होंगे। किन्तु जो आग दूर पर जलती है, वह भी तो तारों जैसी दिखाई देती है। अवश्य तारे इसी तरह आग जलने के चिन्ह होंगे। क्यों काद्रवेय ?

काद्रवेय—मैं नहीं जानता मध्यम, न जाने तू क्या सोचता रहता है।

मध्यम०—मुझे चन्द्रमा, रात्रि, नदी, उषा, सन्ध्या आदि को देखते रहना अच्छा लगता है। जैसे यह मुझसे बातें करते हैं।

कनिष्ठ—मुझे भ्रमण अच्छा लगता है। भ्रमण करते रहना, भोजन करना, सुरापान करना।

विश्वावारा—मुझे ज्येष्ठकाद्र से बातें करते रहना ।

ज्येष्ठ०—मुझे विश्वावारा को देखते रहना ।

काद्रवेय—मैं भ्रमण करता रहा हूँ, वही मुझे अच्छा लगता है ।

काद्रवेयी—मुझे तेरे साथ रहना काद्रवेय ! पहले मुझे ये सब अच्छे लगते थे, अब तू ही अच्छा लगता है ।

मध्यमा०—मुझे विश्वपंचजन प्रिय है ।

उषा०—मुझे रुद्रपंचजन का आर्लिगन । क्यों रुद्र ?

रुद्र०—हाँ प्रिये ! लो वरुण आ गए ।

[विश्व के साथ वरुण आता है । वरुण पंचजन की बड़ी हुई दाढ़ी, भोजपत्र का उत्तरीय, विशाल नेत्र, लम्बी नाक । काद्रवेय से अवस्था में विशेष अन्तर न होने पर भी आकृति में गम्भीरता और तीक्ष्णदर्शिता प्रकट हो रही है । उस महाकाय आकृति के आने पर सब लोग बातें करना बन्द कर देते हैं । केवल काद्रवेय 'स्वागत' करता है । इसके बाद सब स्वागत कहते हैं । वरुण-पंचजन अग्नि के समीप एक आसन पर बैठ जाते हैं]

विश्वपंचजन—पितर वरुण, ये काद्रवेय परिवार-पति हैं । ये काद्रवेयी हैं ।

काद्रवेय—पितर वरुण, परिवार ने पुरानी प्रथा को तोड़ दिया है ।

काद्रवेयी—पितर वरुण, विवाह क्या होता है ?

विश्वपंचजन—पितर वरुण, मैं मध्यमाकाद्रा से विवाह करना चाहता हूँ ।

वरुण—भ्रातर काद्रवेय, विवाह पशुओं से ऊपर उठे हुए मनुष्य के लिए आवश्यक कार्य है । पशु बिना हाथ के खाते हैं, हम हाथों से भोजन करते हैं । हम हाथ से कई अन्य कार्य करते हैं । इससे सिद्ध है, हम पशु नहीं हैं । इसलिए हम पशुओं की तरह नहीं रह सकते । विवाह पशुता को रोकने के लिए है ।

काद्रवेय—मैं कुछ भी नहीं समझा ।

काद्रवेयी—मैं कुछ-कुछ समझी हूँ, पितर वरुण ! हम पशु नहीं हैं, मनुष्य हैं, फिर पशु की तरह नहीं रह सकते । हमें मनुष्य बनना होगा ।

काद्रवेय—किन्तु तेरे समझने से मैं कैसे समझ सकता हूँ ?

काद्रवेयी—यही कि जैसे पशु बिना नियम के एक दूसरे से मिलते हैं, वैसे

हम को नहीं मिलना चाहिए । मैं कभी-कभी सोचती हूँ, ऐसा हम क्यों करते हैं ?

वरुण—(काद्रवेय से) यदि कोई काद्रवेयी को तुम्हारे सामने से उठा कर ले जाए, तो तुम्हें.....।

काद्रवेय—(एकदम) मैं उसे मार डालूँगा, पितर वरुण ! यह मुझे प्रिय है । मुझे कनिष्ठ और मध्यम काद्र भी कभी-कभी बुरे लगते थे ।

काद्रवेयी—यह मुझे प्रिय है, पितर !

वरुण—ठीक है, तुम्हें बुरा लगेगा । इस बुरा लगने और युद्ध रोकने के लिए आवश्यक है कि युवक-युवती एक-दूसरे को सदा के लिए चुन लें और कोई व्यक्ति उन दोनों के बीच में न आवे । इस चुनने का नाम ही 'विवाह' है ।

मध्यमा०—यह ठीक है । युद्ध रोकने के लिए आवश्यक है कि युवक-युवती एक-दूसरे को सदा के लिए चुन लें । और कोई व्यक्ति उन दोनों के बीच में न आवे, इस चुनने का नाम ही "विवाह" है ।

मध्यम०—यह ठीक है । युद्ध रोकने के लिए यह आवश्यक है । पितर वरुण ! विवाह इसीलिए आवश्यक है ।

काद्रवेय—जब मध्यमकाद्रवेय कहता है, तब यह अवश्य ठीक होगा । मैं इसको परिवार में समझदार मानता हूँ, पितर वरुण ! किन्तु एक स्थान पर रहना तो किसी तरह भी ठीक नहीं है ।

वरुण—हम पशुओं से इस लिए श्रेष्ठ हैं कि हम सोच सकते हैं, वे सोच नहीं सकते ।

काद्रवेयी—ठीक तो है, काद्रवेय, वे कहाँ सोच सकते हैं । अरे, वे तो बोलते भी नहीं हैं । सचमुच आज यह बात समझ में आई ।

वरुण—मनुष्य इसीलिए श्रेष्ठ है कि वह ज्ञानी है । ये नदी, पर्वत, वृक्ष, पशु सब मनुष्य के लाभ के लिए हैं, हम इन के लिए नहीं हैं ।

काद्रवेयी—बिलकुल-बिलकुल । आहा, क्या सुन्दर बात है, काद्रवेय ! पशु हमारे लिए हैं, ठीक तो है ।

वरुण—इन पर्वतों, नदियों, वृक्षों, पशुओं के द्वारा हम बहुत कुछ जान

सकते हैं। उनसे लाभ उठा सकते हैं। जब हमारा समाज बड़ जाएगा, तब हम...।
तुम ने कुटीर बनाया है, पशु कहाँ बना पाते हैं ?

ज्येष्ठ—विवाह, वरुण पंचजन !

विश्व पंचजन—हाँ, पितर !

रुद्र—हाँ ।

वरुण—विश्व और मध्यमाकाद्रा से ज्येष्ठकाद्र और विश्वावारा से तथा
रुद्र और उषा से) अग्नि सब को जलाता है, सब को प्रकाश देता है ।

दो-ओ का युग्म—हाँ, वरुण पितर !

वरुण—यह पृथ्वी हमको धारण करती है ।

दोनों—हाँ, वरुण पितर !

वरुण—यह चन्द्रमा हमको रात्रि में प्रकाश देता है, मार्ग दिखाता है ।

दोनों—हाँ, पितर !

वरुण—इनको साक्षी करके कहो, तुम सदा एक दूसरे के साथ रहोगे और
किसी के साथ नहीं ।

दोनों—हाँ पितर, हम ऐसे ही करेंगे ।

वरुण—सुख-दुख में ।

दोनों—हाँ, पितर !

वरुण—बहुत से पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न करोगे ।

दोनों—हाँ पितर, बहुत से पुत्र-पुत्रियाँ उत्पन्न करेंगे ।

वरुण—दोनों पाणि-ग्रहण करो ।

दोनों—(दोनों पाणि-ग्रहण करके) वरुण पितर, हम यही कहते हैं !

वरुण—तुम्हारा विवाह हो गया ।

काद्रवेयी—अरे काद्रवेय, कितनी अच्छी बातें हैं । क्या मेरा भी विवाह हो
सकता है, वरुण पिता ?

काद्रवेय—काद्रवेयी, हमको उसकी आवश्यकता नहीं है । यही तो हम
बहुत दिनों से करते आ रहे हैं ।

वरुण—तुम सब लोग अपनी पत्नियों को लेकर रहो, सृष्टि बढ़ाओ, कृषि

करो, सुन्दर-सुन्दर घर बनाओ, पशुओं को पालो, एक दूसरे की सहायता करो ।

सब—ऐसा ही करेंगे; वरुण पिता !

मध्यमकाद्र—पिता वरुण, यह रात-दिन, उषा-सन्ध्या, चन्द्र, नदी आदि मुझे बहुत प्रिय लगते हैं । ऐसा लगता है, ऐसा लगता है, जैसे मुझसे ये कुछ कहते हैं, पर मैं समझ कुछ नहीं पाता ।

वरुण—मैं भी कुछ समझ नहीं पाता; पर जितना मैं जानता हूँ, वह तुम्हें बताऊँगा, तुम मेरे साथ चलो, मध्यमकाद्र ।

काद्रवेयी—पिता वरुण, यह मेरेय पियो, लो, तुम सब भी पियो ।

[सब पीते हैं, फिर 'हो-हो' करके गाने-नाचने लगते हैं, कर्करी बजती है]

[पटाक्षेप]

पात्र

सरस्वती	:	
शिव	:	
पार्वती	:	
गणेश	:	
महाराज चन्द्रगुप्त	:	सम्राट्
कालिदास	:	कवि
धन्वन्तरि	:	वैद्य
राजामात्य	:	महामन्त्री
गणबास	:	नाट्य शिक्षक
हरवत्स	:	”
ध्रुवदेवी, कुबेरनागा, प्रभावती, विलासवती आदि		

स्थान
हिमालय
अवतिका

प्रथम दृश्य

[दो प्रासादों के बीच में एक उद्यान । उद्यान में कदली फल नारंगी, ताल, तमाल, हिताल, चम्पक, अशोक, आम्र, जामुन के वृक्ष हैं । अशोपुष्पी, नागक, तुम्बरी की लताएँ, चम्पा, मालती, गेंदा यूथिका, रजनीगंधा के पौधे हैं । बीच में स्फटिक-निर्मित लघु सर हैं, जिसमें नील, रक्त, श्वेत, पीत कमल खिले हुए हैं । सरोवर के चारों ओर बैठने की स्फटिक शिलाएँ, उत्तर की तरफ लता-मण्डप पूर्व और पश्चिम में वाटिका विहार बने हैं । सरोवर के पास सारस, हंस बतकों के जोड़े घूम रहे हैं । शंख और साँपी की बनी हुई प्रतोली में से राजपरिचारिकाएँ भिन्न प्रकार के कौशेय वस्त्र, अलंकार धारण किए आ जा रही हैं । परिचारिकाओं की वेणी नितम्ब तक लटकती । कंचुकी से स्तन बंधे हुए । नीचे कौशेयपट्ट । मस्तक में कस्तूरी तिलक, भुजाओं में अंगद, वलय, मणि-बंध, गले में ग्रंथेयक । पैरों में पादत्राण । अंगुलियों में रत्नजटित मुद्राएँ । एक प्रासाद से दूसरे प्रासाद तक जाने में थोड़ा ही मार्ग पार करना पड़ता है । एक प्रासाद चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का है, दूसरा महारानी ध्रुवदेवी का । दो परिचारिकाएँ हाथों में फूल, मिष्टान्न तथा शाटकों से युक्त ढके हुए थाल लिए आती हैं । ये प्रासाद के साधारण द्वार हैं, महाद्वार नहीं । दोनों के पास दो प्रतिहार खड़े हैं दूर से बाद्यों की ध्वनि आ रही है, जिसमें कई स्वर समवेत हैं । पहली परिचारिका, कौशेय-शाटिका से जिसके पैर उलझ गए हैं, और गिरना ही चाहती है । समय प्रायःकाल बस बजे ।]

दूसरी परिचारिका—अरे वासन्ती, तनिक देखकर तो चलो क्या सौन्दर्य इतना दुर्बल हो गया है ? (हँसती है)

वासन्ती—सखि ! क्या बताऊँ, तुम नहीं जानती यह कौशेयपट्ट मेरे लिए भार हो गया है । सौन्दर्य तो भला क्या भार होगा ?

मधुरिका—यह हाथ में क्या सामग्री है ?

वासन्ती—आज कुमार का चालीसवाँ दिवस है, महारानी का शृंगार हो रहा है, इसलिए ये जालपट्टक लिए जा रही हैं ।

मधुरिका—ओह, समझी । महारानी की परिचारिका का गौरव भी थोड़ा नहीं है । क्या इसलिए आज नवपरिधान मिला है ?

वासन्ती—सब परिचारिकाओं को महाराज की ओर से एक-एक रत्नहार देने की घोषणा हुई है न !

मधुरिका—सुनती तो हूँ । आह कितना सुन्दर दिन है आज, तुम भी तो बहुत सुन्दर लग रही हो ।

पहला प्रतिहारी—छवि फूटी पड़ रही है, साक्षात् महाश्वेता हों जैसे ।

दूसरा प्रतिहारी—काश्मीर किन्नरी जो हुई । एक ये हैं कोकण की श्रीमति लवंगलता ।

मधुरिका—(तीक्ष्ण दृष्टि से देखती हुई) अपना रूप तो देखो, जैसे बाँस को वस्त्र पहना दिए गए हों ।

पहला प्रतिहारी—यह बाँस अब शीघ्र ही बुहारी की सीक हो जाने वाला है ।

दूसरा प्रतिहारी—प्रतीक्षा की भी कोई सीमा है वासन्ती । स्वयं महाराज भी जब अनुरोध करके हार गए तब मेरी क्या सामर्थ्य है कि मधुरिका को मना सकूँ । हाँ, यदि मुझे एक क्षण को भी कविवर कालिदास का रूप मिल जाता, फिर देखता कौन भुवनमोहिनी मुझसे दूर भागती है ।

पहला प्रतिहारी—बबूल का पेड़ कभी भी द्राक्षा-वल्लरी नहीं हो सकता ।

दूसरा प्रतिहारी—आज दस वर्ष से तप कर रहा हूँ ।

पहला प्रतिहारी—तप का फल मीठा होता है मन्थरक ! धैर्य धारण करो ।

वासन्ती—तुमने सुना सखि ! आज कविवर महाराज और महाराज्ञी को वह ग्रन्थरत्न भेंट करने वाले हैं जो उन्होंने कुमार के जन्मोत्सव पर लिखा है । आज सायंकाल को वह कृत्य सम्पन्न होगा ।

मधुरिका—हाँ, अभी-अभी सुना है, परम भट्टारक महाराज राजामात्य

से कह रहे थे कि कविवर स्वयं उस ग्रन्थ का कुछ अंश हमको सुनाएँगे। आज ही ग्रन्थ समाप्त होगा न, उसी के निमित्त आज उत्सव हो रहा है। ओह, कितने महान् कवि हैं कालिदास।

वासन्ती—साक्षात् सरस्वती उनके मुख से बोलती हैं। मेरे देश काश्मीर में एक से एक महान् पण्डित हैं, कवि हैं; किन्तु ऐसा रस तो किसी की कविता में नहीं पाया। उस दिन वे महाराज को 'कुमार-सम्भव' के कुछ अंश सुना रहे थे।

पहला प्रतिहारी—वह ब्रह्मचारी वाला अंश क्या? वाह कितना सुन्दर है।

वासन्ती—हाँ, वही। सुनकर मेरी आँखों से तो भर-भर अश्रुपात होने लगा। पार्वती का कितना सुन्दर वर्णन है मधुरिका; और पाठ-माधुर्य मानों सरस्वती वीणा पर गा रही हो। इतना रस, पदाभिव्यक्ति, सरसता! मैंने देखा स्वयं महाराज उसे सुनकर कभी गद्गद हो उठते थे।

मधुरिका—कांचन को रत्न मिल गया है। हमारे महाराज का परम सौभाग्य है कि ऐसे महान् कवि उनके राज्य में हैं।

दूसरा प्रतिहारी—तो हमारे महाराज क्या कम हैं? संसार में ऐसा महान् सम्राट् हुआ ही कौन है?

वासन्ती—सम्राट् तो ऐसे हो गए होंगे, किन्तु कवि तो ऐसा हुआ ही नहीं।

[महाराज और ग्रामात्य का प्रवेश]

चन्द्रगुप्त—हाँ वासन्ती, तुम ठीक कहती हो। सम्राट् तो मेरे जैसे कई हो गए, किन्तु कालिदास जैसा कोई कवि नहीं हुआ।

(महाराज को आया जान सब चुपके से इधर-उधर चली जाती हैं) क्यों राजामात्य?

राजामात्य—क्या निवेदन करूँ महाराज, दो मोदक, दोनों ही अमृत मधुर।

चन्द्रगुप्त—नहीं राजामात्य, वासन्ती यथार्थ कह रही है। यह मेरा सौभाग्य है। अच्छा देखो, आज हमारी सभा में कुछ असामान्य व्यक्ति ही आ

सकेंगे, इसका ध्यान रखना । कविवर आज वह ग्रन्थ सम्पूर्ण करके लाने वाले हैं । महाराज्ञी भी होंगी ।

राजामात्य—यथार्थ है प्रभो ! इसके अतिरिक्त एक निवेदन यह है कि तक्षशिला, स्वात, पंचनद, मगध, उदयगिरि में कुमारजन्म का उत्सव बड़े समारोह से मनाया गया है ।

चन्द्रगुप्त—ठीक है, राजा प्रजा की सम्पत्ति है । महामात्य, कच्छ और सिन्ध के विद्रोह की क्या अवस्था है ?

राजामात्य—महाराज विष्णुदास के पुत्र सनकानिक वंशी को सिन्ध में शत्रु का दमन करने भेजा है । उनका सन्देश है कि प्रजा ने परम भट्टारक की प्रजा होना स्वीकार कर लिया है । स्वयं महाराज सनकानिक को प्रजा ने सहायता दी है । साँची के आम्रकार्दव नामक व्यक्ति ने कुमार-जन्मोत्सव के उपलक्ष में अनेक संधाराम बनवाए हैं ।

चन्द्रगुप्त—बौद्ध और वैष्णव दो थोड़े ही हैं । मेरे राज्य में सब धर्म एक समान हैं । महाकवि के ग्रन्थ के भेंट के उपलक्ष में उज्जयिनी की चमू, चमूप, बलाधिकृत, महाबलाधिकृत, बलाध्यक्ष, महाबलाध्यक्ष समस्त-सेनाप्रेसर, रण-भाण्डागाराधिकरण तथा महासेनापति को एक मास का वेतन अधिक दिया जाए । कृषकों का एक मास का कर क्षमा किया जाए ।

राजामात्य—जो आज्ञा प्रभो !

चन्द्रगुप्त—सम्पूर्ण पारिषदों को कौशेय-पट्ट तथा एक-एक रत्नहार भी । महामात्य ! (कुछ उदास हो जाते हैं)

राजामात्य—महाराज कुछ चिन्तित हैं क्या ?

चन्द्रगुप्त—हाँ मन्त्री, अभी प्रातःकाल एक स्वप्न देखा है, तभी से व्यग्र हूँ ।

राजामात्य—बराहमिहिर क्या कहते हैं ?

चन्द्रगुप्त—वे कहते हैं स्वप्न सत्य होगा ।

राजामात्य—था क्या वह ? महाराज का तो प्रताप ऐसा है कि दुःस्वप्न रह ही नहीं सकते । क्या था वह ?

चन्द्रगुप्त—देखता हूँ हमने उत्सव की आयोजना की है, उसी समय एक मुनि आए हैं ।

राजामात्य—मुनि का दर्शन मुखकर है ।

चन्द्रगुप्त—नारद हैं मानो । आते ही बोले—कल्याण हो राजन्, और देखो, उस समय उत्सव का भी सम्पूर्ण आयोजन हो ।

राजामात्य—यह तो उन्होंने उचित ही किया । उत्सव का आयोजन अवश्य होगा महाराज ।

चन्द्रगुप्त—हाँ, मैंने कहा—‘महामुने, प्रणाम करता हूँ’ । मैंने पूछा—कहाँ से पधारे ? वे बोले—‘आज कैसा उत्सव है महाराज ? मैं ऐसे ही धूमता चला आया । तुम्हारे राज्य में सब प्रजा प्रसन्न है, तुम धन्य हो राजन् ।’

मैंने कहा—मुनिवर, आपकी कृपा है । हाँ आज कुमार की उत्पत्ति का चालीसवाँ दिन है । आज महाकवि कालिदास, महाराज्ञी ध्रुवदेवी को ‘कुमार-सम्भव’ भेंट करने वाले हैं, उसी का उत्सव है महामुने ! आपने महाकाव्य सुना ? बड़ा सुन्दर काव्य है मुनिश्रेष्ठ ! जीवन में जो विजय मैंने प्राप्त की है जो श्रेष्ठ कार्य किए हैं, वह कालिदास के एक श्लोक की बराबरी नहीं कर सकते । वे साक्षात् सरस्वती के अवतार हैं । अभी पन्द्रह दिन हुए वे कुछ अंश हमें सुना गए थे, आज वह समाप्त करने वाले हैं । इस पर मुनि बोले—

‘वह काव्य तो स्वामि कार्तिकेय के जन्म से सम्बन्ध रखता है न ? मैंने उसके कुछ अंश सरस्वती से स्वयं सुने हैं । उस दिन वे भगवान् शंकर और पार्वती को सुना रही थीं ।’ मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, मैंने कहा, हाँ ऐसा, फिर उन्होंने क्या कहा ? मुनि बोले—

‘क्या कहा होगा राजन् ? तुम क्या समझते हो,’ इस पर मैंने कहा—भगवान् शंकर तो अवश्य प्रसन्न हुए होंगे । वह रचना ऐसी है; और कालिदास स्वयं शंकर के उपासक हैं । मुनि एकदम उदास से होकर कहने लगे—

‘हूँ, रचना ऐसी ही है, हाँ अच्छी है ।’ मैंने इसके बाद आग्रह किया—कृपा करके बताइए आपकी क्या सम्मति है ? इस पर मुनि मेरी बात का उत्तर न देकर बोले—

‘राजन्, मैं सरस्वती को खोज रहा हूँ। इधर वे कई दिनों ने मिली नहीं है। ब्रह्मा, हमारे पिता, उनसे मिलने के लिए चिन्तित हैं। स्वर्ग में वह कहीं नहीं मिल रही हैं। न जाने कहाँ चली गई, यहाँ भी नहीं हैं। कालिदास के आश्रम में भी नहीं हैं। और कालिदास पिछले एक सप्ताह से ध्यान-मग्न हैं।’

इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गए।

उसके बाद निद्रा भंग हो गई। संभ्रम संज्ञा प्राप्त करके मैंने सोचा यह मैंने क्या देखा? यह कौन थे—नारद? कालिदास एक सप्ताह से ध्यान-मग्न हैं। प्रतिहारी से ज्ञात हुआ, सचमुच वे ध्यान-मग्न हैं। (घूमते हुए लौटकर) मैं कालिदास को देखना चाहता हूँ।

राजामात्य—मैं सन्देश भेजता हूँ पृथ्वीनाथ !

चन्द्रगुप्त—नहीं, मैं स्वयं जाऊँगा और देखूँगा कि इस स्वप्न का क्या प्रभाव कवि पर पड़ा है। वस्तुतः राजामात्य, लौकिक साहित्य को प्रोत्साहन देना भी मेरे जीवन का एक लक्ष्य है। मैंने कविवर से कहा है कि वे कुछ नाटक भी लिखें। इस समय तक जो नाटक लिखे गए हैं वे मुझे सन्तुष्ट न कर सके।

राजामात्य—भास के नाटकों में चरित्र-विकास, संवाद-सौन्दर्य होते हुए भी रस-परिपाक की त्रुटि है, ऐसा मैंने अनुभव किया है।

चन्द्रगुप्त—मैं चाहता हूँ कि कालिदास ही नाटक लिखें। निश्चय ही उनके नाटक महाकवि भास के नाटकों से श्रेष्ठ होंगे, ऐसा विश्वास है।

राजामात्य—उस दिन खेले जाने वाले उनके नाटक के निदर्शन को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। एक तरह से ‘स्वप्न-वासवदत्ता’ में जीवन आ गया।

चन्द्रगुप्त—माणिक्य सब जगह चमकता है राजामात्य ! उनकी कविता में जितनी स्वाभाविकता है जितना रस-परिपाक है, जितना प्रवाह है वह मुझे बहुत कम अन्यत्र मिला है, राजामात्य।

राजामात्य—उनकी कविता को सुनकर ऐसा ज्ञात होता है मानो कोई अदृश्य शक्ति बोल रही है। वे स्वयं पढ़ते-पढ़ते तन्मय हो उठते हैं।

चन्द्रगुप्त—वे अपूर्व हैं।

[चले जाते हैं]

द्वितीय दृश्य

[कैलाश-शिखर के ऊपर देवदारु-निर्मित एक कुटीर । उसके बाहर तृणासन पर पार्वती बैठी हैं । सामने गणेश उनके घुटनों से लगे ऊँध रहे हैं । कभी-कभी सूँड उठाकर इधर-उधर हिला देते हैं, कभी मुँह चलाते हैं । कुछ दूर सरस्वती बैठी हैं । सामने का हिम-खण्ड रिक्त है । वह शिव का सिंहासन है । ज्ञात होता है दोनों में कुछ गरमागरम विवाद हो चुका है । बात बढ़ जाने पर गणेश की निद्रा भंग हो जाती है, वे सिर उठाकर इधर-उधर देखने लगते हैं और कोई विघ्न न जानकर फिर ऊँधने लगते हैं । कभी-कभी वीरभद्र त्रिशूल लेकर इधर निकल आते हैं । पार्वती के सामने अपने अस्तित्व का भान कराकर चले जाते हैं । दूर पर बैठा सिंह कभी-कभी एक दहाड़ लगाता हुआ मुँह चला कर शान्त हो जाता है । पार्वती रु-मृग के चर्म का परिधान ओढ़े हैं, जो कोरों से बँधा हुआ है । काले मृग के चर्म से उनकी मुख-शोभा द्विगुणित हो रही है सिर के बाल बिखरे हुए हैं । रत्नों की माला गले में है । सूर्य के प्रकाश में वह माला कभी-कभी इतनी चमक जाती है कि पार्वती का मुँह महाप्रकाश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ढीख पड़ता । सरस्वती रक्त-कौशंय की शाटिका पहने आभूषणों से सुसज्जित । पार्वती का छोना सरस्वती की कमल का पुष्पगुच्छा जानकर उन्हें चबाने तथा चाटने दौड़ पड़ता है । पार्वती उसे हटा देती है । दूर भूत-प्रेतों की बातचीत की स्पष्ट ध्वनि सुनाई दे रही है ।]

पार्वती—तुम्हीं सोचो, जिसने मेरे सम्बन्ध में ऐसा वर्णन किया हो उसे मैं कैसे क्षमा कर सकती हूँ, चाहे वह स्वयं इन्द्र ही क्यों न हो ।

सरस्वती—किन्तु तुम्हें जगन्माता भी तो उसने माना है । मुझे दुःख है, तुम व्यर्थ ही नारद की बातों में आ गई, उसका तो कार्य ही परस्पर भगड़ा कराना है माँ !

पार्वती—इसमें नारद का कोई दोष नहीं है । यह तो स्पष्ट सत्य है । क्या तुम उचित समझती हो कि किसी के सम्बन्ध में इतना शृंगार वर्णित किया जाए और वह अनुचित न माने !

सरस्वती—सुन्दर को सुन्दर कहने में दोष क्या है यही मैं नहीं जान सकी ।

स्त्री के यौवन की सार्थकता उसके रूप में, उसके सौन्दर्य में, उसके विलास में है । पुरुष के यौवन में वीरत्व है, साहस है, कठिन से कठिन कार्य करने की क्षमता है, किन्तु स्त्री की चरम सार्थकता मातृत्व में है और मातृत्व से पहले यौवन की उद्दाम प्रवृत्ति का वही रूप है जिसके लिए प्रत्येक ललना जन्म-जन्म से आकांक्षा करती है । वरदान माँगती है । इसके अतिरिक्त तुम्हारे विवाह के द्वारा स्कन्द की उत्पत्ति के लिए विश्व की जड़-चेतन, अमर-अजर सभी शक्तियों ने कितनी घोर प्रार्थना की है; यह भी तो किसी से छिपा नहीं है । मैं तुमसे सत्य कहती हूँ कि कालिदास की यह रचना आप्रलय अमर रहेगी । केवल एक बार तुम्हारे प्रसन्न होने की आवश्यकता है माँ !

पार्वती—मैं कालिदास को जानती हूँ । कई बार हम दोनों ने उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया है, और भगवान् तो उन पर इतने प्रसन्न हैं कि व्यास, वाल्मीकि के बाद उन्हें ही स्मरण करते हैं ।

सरस्वती—यह भगवान् का महान् अनुग्रह है । उस दिन 'कुमार-सम्भव' का प्रथम और दूसरा सर्ग जब मैंने सुनाया तो वे गद्गद् हो उठे और तुम भी कम प्रसन्न नहीं थीं ।

पार्वती—तुम्हें ज्ञात है विधाता, तुम्हारे पिता कालिदास को उत्पन्न करने के कितने विरुद्ध थे ?

सरस्वती—वे तो हुए वृद्ध, उनसे कोई क्या कहे । उस कवि का होना विश्व-कल्याण के लिए परम आवश्यक है ।

पार्वती—नहीं, कहते थे व्यास और वाल्मीकि के बाद उस कोटि का कोई भी कवि पैदा नहीं किया जा सकता ।

सरस्वती—किन्तु व्यास और वाल्मीकि से हम उसकी समता ही कहाँ कर रहे हैं ? भगवान् वेदव्यास को तो मैं जानती हूँ, वे तो साक्षात् विष्णु के अवतार हैं ।

गणेश—(एकदम चेतन होकर) माँ व्यासजी आ गए क्या ? उनसे कह दो मैं सो रहा हूँ । स्वास्थ्य भी ठीक नहीं है । प्राण ही चूस लिए उन महानुभाव ने तो ।

पार्वती—नहीं पुत्र, उनकी बात चल पड़ी केवल ।

गणेश—नहीं । नहीं, मुझसे अब वह काम न होगा । उनकी वाणी तो रुकना जानती ही नहीं । पवन के समान अव्याहत । काल के समान अणु-परमाणु तथा महत्ता से युक्त । आज भी जब स्मरण हो जाता है तब मुझ विघ्नहर को भी एक विघ्न उपस्थित हो जाता है ; तुम जानती हो जब मैं महाभारत लिखने बैठा तब मैंने क्या कहा था ।

सरस्वती—देखो भैया, अब वह समय नहीं आएगा । तुम भी तो जानते थे कि मेरे जैसा कोई लेखक नहीं । अभिमान नहीं करना चाहिए ।

गणेश—अभिमान की बात नहीं । जब महाभारत लिखने का प्रश्न आया तो मैंने सोचा कि व्यासजी को 'चमत्कार दिखाने का यह अच्छा अवसर है । इसलिए कह बैठा—'देखिए, व्यासजी यदि आप रुक गए तो मैं आगे नहीं लिखूंगा ।'

पार्वती—फिर भी न जाने तूने इतना कैसे लिख लिया । हाथ दुख गए होंगे पुत्र ! (उनके हाथ सहलाती है) हाँ फिर क्या हुआ ?

सरस्वती—आगे का रहस्य मैं बतलाती हूँ । जब गणेश का आग्रह उन्होंने सुना तो चुप हो रहे और मेरी प्रार्थना करने लगे । एकबार मन में आया कि कोई लेखक खोजें । व्यास को उस समय बड़ी ग्लानि हुई । जिनकी वाणी वेदों का विस्तार करते न रुकी, पुराणों का उपबृंहण करते न परास्त हुई वे इन गणेश के सामने घैर्य खो बैठे । मैं उस समय पिता के पास बंठी थी । वे एक वाणी से चारों मुख बोल उठे 'अब ! महाभारत अवश्य लिखा जाना चाहिए ।' मैंने उत्तर दिया—मैं जाती हूँ । आकर जो मैंने देखा तो व्यास चुप बैठे थे । मैंने कहा—मैं आपकी सहायता करूँगी । कूट बोलिए और गणेश से कहिए कि समझकर लिखें ।

[हँसती है]

गणेश—कूट, वह भी एक भयंकर काम था । मुझे एकदम सम्पूर्ण कोषों को छानना पड़ता था । कभी सूँड से माथा खुजलाता, कभी उसे दबाता तब कहीं जाकर श्लोकों के अर्थ समझ में आते । किन्तु माँ, व्यास सचमुच व्यास हैं;

यह मानना पड़ेगा। महाभारत में सहस्रों शब्द तो ऐसे हैं जिनको उन्होंने प्रकृति-प्रत्यय लगाकर तत्क्षण बनाया है। अच्छा, तो यह आपकी करामात है, अब समझा ! यह उस समय ज्ञात होती तो मैं भी व्यास को वह चकमा देता कि तुम्हें भी जाकर ब्रह्मा से ही पूछना पड़ता।

सरस्वती—वह न कहना भैया, व्यास से छिपा ही क्या है—उस काले कलूटे से।

गणेश—फिर भी मैं तुमसे डरता हूँ जीजी ! अब न जाने क्या पचड़ा ले बैठों। मालूम है रात भर पिता और माँ में विवाद होता रहा है। भला, नारदजी क्यों क्रुद्ध हैं। माँ तो केवल नारदजी के कहने से क्रुद्ध हैं।

पार्वती—तू क्या जाने कि मैं नारद के कहने से ही क्रुद्ध हूँ। प्रत्येक को अपनी मान-मर्यादा प्रिय होती है। पुत्र !

सरस्वती—मुझे तो यह खेद है कि ऐसा सुन्दर काव्य अधूरा रह जाएगा माँ !

पार्वती—और मुझे यह प्रसन्नता है कि मैंने कवि को उसकी धूर्तता का दण्ड दे दिया।

गणेश—यदि वे मेरा नाम लेते तो मैं कभी ऐसे सुन्दर काव्य को अपूर्ण न रहने देता।

सरस्वती—तो फिर तुम्हारा नाम दिलवा दूँ पहले ! मैं क्या कहूँ, पिताजी कहते हैं कि मैं वृद्ध हो गया संसार का निर्माण करते-करते, कोई मेरा वर्णन ही नहीं करता। तुम कहते हो मेरा नाम नहीं है। याद रखो गणेश, भक्ति की पुस्तकों में, साधारण कथाओं में, पूजा-पाठ के ही तुम काम के हो, महान् शास्त्रों से तुम्हारा क्या सम्बन्ध ?

गणेश—(हँसकर) अच्छा, भला नारद क्यों क्रुद्ध हैं ?

पार्वती—नारद मेरा भक्त है ! मेरा सौन्दर्य-वर्णन उससे नहीं देखा गया इसलिए।

गणेश—मिथ्या है।

[स्कन्ध का प्रवेश, सरस्वती और माँ को प्रणाम करके]

स्कन्द—देखो माँ, नारद की यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती ।

पार्वती—क्या ?

स्कन्द—सुना है, तुमने 'कुमार-सम्भव' को अपूर्ण रहने का शाप दिया है । मेरे ऊपर एक ही तो काव्य लिखा गया और वह भी अधूरा । मुझसे नारद कह रहे थे कि 'चन्द्रगुप्त के पुत्र का नाम कुमार रखा गया है । एक तरह से तुम्हारी समानता की गई है—यह बुरी बात है । क्या चन्द्रगुप्त का पुत्र स्कन्द समान हो जाएगा ?' इस तरह कह कर मुझे उभार रहे थे । किन्तु स्कन्द मेरा ही तो नाम नहीं है । जब मैंने क्रोध में जाकर कालिदास के पास रखी वह पुस्तक पढ़ी तो मेरा हृदय गद्गद् हो गया । सुना है, तुम्हें वह शृंगार के नाम से बहका गए हैं ।

पार्वती—तुम सब अपना-अपना स्वार्थ देखते हो । स्कन्द इसलिए चाहता है कि उसके ऊपर एक काव्य-निर्माण हुआ । गरुड चाहता है कि यदि उसका नाम लिया जाता तो मेरे शाप के बाद भी ग्रन्थ पूर्ण हो जाता । सरस्वती इसलिए चाहती है कि यह हुई रसिक, कला-साहित्य की स्रोत, इसे साहित्य की अपूर्णता खिचकर नहीं है । भगवान् शंकर अपने भक्त का कार्य पूर्ण करने पर तुले हैं । अब भी वे कदाचित् वहीं हों ।

[शंकर का प्रवेश]

शंकर—हाँ देवी, आज एक सप्ताह से कालिदास चिन्तित हैं । आज ही वह ग्रन्थ चन्द्रगुप्त को भेंट किया जाएगा । ध्रुवदेवी ने अपने पुत्र का नामकरण 'कुमार' ही किया है । मैंने कई बार यत्न किया कि वह आगे लिखे, किन्तु लेखनी रुक जाती है, छन्द ठीक नहीं बन पाते । वह रस भी नहीं है । मैंने स्वयं एक दो श्लोक लिखने का प्रयत्न किया तो रेखाएँ खिचकर रह गई । तुम उसे क्षमा करो देवि ! (सरस्वती की ओर देखकर) अरे, सरस्वती, तुम यहाँ क्या कर रही हो ?

सरस्वती—माँ से अभिशाप लौटाने की प्रार्थना करने आई थी किन्तु । ये मानती ही नहीं ।

[गरुड और स्कन्द सिटपट्टते से भाग जाते हैं]

पार्वती—आप गंगा को लिए भ्रमण करते रहें, भक्तों को वरदान देते रहें। आपको क्या, किसी का मान हो अथवा अपमान।

सरस्वती—मैं जाती हूँ। आज कवि के जीवन-मरण का प्रश्न है, दया कीजिए भगवान्।

शंकर—उज्जयिनी से आते हुए ध्यान आया कि विष्णु से मिलता चलूँ। कदाचित् कोई समस्या का समाधान मिल जाए। उन्होंने भी वह काव्य पढ़ा है। और स्पष्ट तो यह है उसके अंश सुनकर लक्ष्मी को ईर्ष्या होने लगी कि उसका वर्णन कवि ने क्यों नहीं किया। विष्णु तो गद्गद हो उठे हैं। कह रहे थे वाल्मीकि के बाद ऐसा काव्य बना ही नहीं। विधाता को यह दुःख है कि कालिदास का निर्माण ही क्यों किया गया? इसीसे सम्पूर्ण स्वर्ग में गड़बड़ी मची है। बेटी सरस्वती, विधाता कह रहे थे कि उन्होंने तुम्हारे ही कहने से कालिदास का निर्माण किया है।

सरस्वती—सत्य है भगवान्, मैं चाहती थी कि साहित्य-कला का प्रचार करने के लिए मनुष्यों में एक ऐसा व्यक्ति उत्पन्न किया जाए जो लौकिक-साहित्य को प्रोत्साहन दे सके।

पार्वती—मनुष्य सदा से देवताओं का विरोधी रहा है। उसने हमारे प्रति विद्रोह रचकर महत्त्व स्थापन करने का प्रयत्न किया है। वह देवताओं के नाम पर अपने राजाओं की स्तुति करता है। यह क्या अच्छी बात है, क्यों नहीं ध्रुवदेवी का वर्णन किया।

शंकर—ससार आश्रय चाहता है, उसकी शक्तियाँ असीम है। मृत्यु, जीवन, यश, अपयश उसके हाथ में नहीं है, इसलिए वह डरता है और कालिदास तो मेरा परम भक्त है, तुम्हारा भी। तुम अपना शाप लौटा लो देवि !

पार्वती—नाथ, यह मेरा मत है, मेरा विश्वास है कि कालिदास ने उचित नहीं किया।

सरस्वती—माँ, आप आद्याशक्ति हैं, विश्वधात्री हैं, जगन्माता हैं। इस संसार का प्रणयन आपसे हुआ है। अतएव मानवोचित इन छोटी बातों में आपको नहीं आना चाहिए। आप तीनों काल, त्रिप्रकृति हैं, फिर राजस से इतना

भय क्यों ? (जाने लगती है)

पार्वती—(मुसकराकर) सरस्वती, तू बड़ी चतुर है। अच्छा, मैं सोचकर उत्तर दूंगी।

शंकर—मैं समाधिस्थ होने जाने जा रहा हूँ, देवि !

पार्वती—नाथ, दया कीजिए। ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी जो आप समाधिस्थ होने जा रहे हैं ? एक साधारण 'व्यक्ति के लिए इतना कष्ट ? कालिदास जैसे अनेकों जीव संसार में हैं उनके लिए भी तो... (शंकर चले जाते हैं)

सरस्वती—(लौटकर) आओ, मैं तुम्हें दिखाऊँ। (पार्वती, सरस्वती खड़ी हो जाती हैं) दोनों दूर देखती हैं—दृश्य बदलता है—(एक राजमार्ग) देखो, वह राजमार्ग है। इस समय तुम वर्तमान, भविष्यत सब देख रही हो। (दोनों देखती हैं। मार्ग में कालिदास की मूर्ति बनी है। छाया-चित्र की तरह महाराज चन्द्रगुप्त कालिदास का अभिवादन कर रहे हैं। लोग आते और प्रणाम करते जाते हैं।)

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—सम्राट् चन्द्रगुप्त। (फिर कुमारगुप्त आते हैं। वे भी कालिदास को प्रणाम करते हैं)

पार्वती—ये कौन है ?

सरस्वती—सम्राट् कुमारगुप्त।

[एक व्यक्ति आता है]

लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निविर्षया गिरः

तेनेदं वर्त्म वंदर्भं कालिदासेन शोधितम्।

[जिस महाकवि की वाणी मधु के रस से आलिप्त थी, उस कालिदास ने वंदर्भों रीति का मार्ग दिखाया है। प्रणाम करके चले जाते हैं।]

पार्वती—यह कौन है ?

सरस्वती—महान् कवि दण्डी।

[दूसरा व्यक्ति आता है, कालिदास को प्रणाम करते हुए]

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु,
प्रीतिर्मधुरसांद्रासु मंजरीष्विव जायते ॥

[कविवर कालिदास की आम्न-मंजरी के समान मीठी और सरस सुक्तियों को सुनकर किसके हृदय में आनन्द का उद्रेक नहीं होता ?]

पार्वती—यह कौन है ?

सरस्वती—जिनके वर्णन के सामने संसार का वर्णन उच्छिष्ट है, वे महा-कवि वाण ।

[एक हेट, बूट, पतलून धारी व्यक्ति आकर प्रणाम करके—]

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत्,
यश्चान्यन्मनसो रसायनमतः संतर्पणं मोहनम्,
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयोः
ऐश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे, शकुन्तलम् सेवयताम् ।

[ग्रीष्म और वसन्त के पुष्प और फल तथा मन को प्रसन्न करने वाले मोहक जितने रस हैं, उनको तथा स्वर्गलोक तथा भूलोक के अभूतपूर्व ऐश्वर्य को, हे मित्र, यदि तुम एकत्र देखना चाहते हो, तो कालिदास के नाटक शकुन्तला को पढ़ो ।]

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—जर्मन के कवि गेटे । वह देखो असंख्य नर-नारियों, बालकों, वृद्धों के करों में कालिदास की पुस्तकें हैं, वे सब पढ़ते जा रहे हैं ।

पार्वती—मैं समझती थी । वह साधारण व्यक्ति होगा । यह तो सचमुच महान् है !

[एक व्यक्ति हाथ जोड़कर खड़ा है]

मनोहारिणीं कुमार-सम्भवकथां गायता यावत्तौ,
स्तूपेतेस्म कवीश्वर ! भवता गोरिगिरीशौ भगवन्तौ,
तस्थुः परितः प्रभया सर्वे शान्ततमाश्च ततो मंदम्
सायतन्यो नीरदमाला आचक्रमिरे गिरिशिखरम् ।

पार्वती—ये कौन हैं ?

सरस्वती—महाकवि रवीन्द्रनाथ ।

[दूर से एक व्यक्ति गाता चला आता है—]

विश्वभारती कल्पलता के अमर मकरन्द अमंद

युग युगान्त का तिमिर चीरकर हुए प्रकाशित जिनके छन्द,

नग अधिराज शिखर गौरव से जिनके गाते गीत ललाम,

कविकुल-गुरु उन वश्यवाक् श्रीकालिदास को सतत् प्रणाम ।

अमर-भारती वीणा-वादिनि, जिनको पा कृत्कृत्य हुई,

कालत्रय की प्रकृति भाव ले शब्द-शब्द का भृत्य हुई,

अति तेजस्वी अमर, यशस्वी, अमर विधाता, अति अभिराम,

उस प्रकाश को, उस विकास को कालिदास को सतत् प्रणाम ।

पार्वती—सुन्दर, कालिदास वस्तुतः महान् हैं । मुझे खेद है कि मैंने ऐसे व्यक्ति को शाप दिया । (पार्वती चिन्ता-मग्न खड़ी रहती है)

सरस्वती—(स्वगत) कदाचित् कुछ काम बन जाए । कालिदास, मैं तुम्हारे लिए जो भी कर सकती थी, कर रही है । यद्यपि मुझे तुम्हारे वर्णन में कोई आपत्ति नहीं है । (पार्वती से) क्या सोच रही हो माँ ?

पार्वती—(हँसकर) सोचती हूँ एक बार शंकर से फिर विवाह होता !

सरस्वती—(हँसकर) एक बार फिर यौवन के दिन लौटते, क्यों ?

पार्वती—देवताओं के बूढ़े न होने पर भी इच्छाएँ तो बुढ़ा जाती हैं सरस्वती !

सरस्वती—प्राणी की साधारण इच्छाएँ ही बूढ़ी होती हैं और देवताओं को तो कुछ भी अप्राप्य न होने से उनकी इच्छाएँ होती ही नहीं, माँ ! कालिदास के सम्बन्ध में फिर तुम्हारा क्या मत है ?

पार्वती—शाप नहीं लौट सकता । हाँ, मैं आशीर्वाद देती हूँ; 'वह काव्य अधूरा रहकर भी विश्व-साहित्य का उज्ज्वल रत्न होगा ।' चलो, कालिदास, तुम महान् हो ।

सरस्वती—(सोचती हुई) चलो, यह मेरा काम है, तुम्हारा नहीं ।

तृतीय दृश्य

[कालिदास का निवास-प्रासाद । पहले दृश्य में दिखाए गए उद्यान के समान । जहाँ छहों ऋतुएँ निवास करती हैं । उद्यान में अनेक प्रकार के पुष्पों, फलों से लदे वृक्ष । पास ही वाटिका । उत्तर की ओर क्रीड़ापर्वत, पूर्व की ओर बापी, अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों से युक्त । क्रीड़ापर्वत के नीचे लताच्छादित वाटिका में महाकवि वर्तमान हैं । लता की यवनिका बनी हुई है, जो दूर से दिखाई देती है । उससे कुछ दूर हटकर स्वर्ण-स्यन्दिका पर विलासवती मौन उदास बैठी है । विलासवती केशर के रंग-सी मधुर, कृश-शरीर वाली रमणी है । नखशिख मानो विधाता ने विशेष रूप से गड़कर बनाए हैं । केश-राशि बिखरी हुई । नेत्र ज्योतिहीन, फिर भी मनोज्ञ । कभी चिन्ताविषय के कारण भ्रमण करने लगती है, कभी बैठ जाती है । परिचारिका मधुपात्र लिए खड़ी है ।]

परिचारिका—(कुछ आगे बढ़कर) लीजिए, थोड़ा-सा मधु-पान कर लीजिए, चित्त स्वस्थ हो जाएगा देवि, आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है ।

विलासवती—नहीं, मदनिके ले जा । मेरा चित्त स्वस्थ नहीं है । न जाने कविवर को क्या हो गया है ? वे पिछले सप्ताह से बहुत ध्यानमग्न हैं ।

परिचारिका—यह तो मैं देख रही हूँ । वैद्यवर धन्वन्तरि ने कोई उपचार नहीं बताया ?

विलासवती—सब कुछ कर चुके, सब उपाय व्यर्थ गए । वे तन्मय हैं, बोलते भी नहीं । मैं जीवित न रह सकूंगी मदनिके, यदि कवि को कुछ हो गया । ओह, ऐसी कल्पना करते भी प्राण निकले जा रहे हैं ।

[दौड़ा हुआ प्रतिहारो आता है]

प्रतिहारो—महाराज महाराज प...धा...र रहे हैं, देवि !

विलासवती—महाराज ? (उठकर) कहाँ हैं ?

[परिचारिका मधुपात्र लता की ओट में रखकर खड़ी हो जाती है, महाराज धन्वन्तरि वैद्य के साथ आते हैं । विलासवती और परिचारिका दोनों नतमस्तक

होकर खड़ी हो जाती हैं ।]

चन्द्रगुप्त—कहाँ है कवि ?

[विलासवती लताच्छादित बाटिका की ओर संकेत करती है]

चन्द्रगुप्त—मैं कवि के दर्शन करना चाहता हूँ ।

विलासवती—देवाधिदेव, आज्ञा नहीं है । कवि व्यस्त हैं ।

चन्द्रगुप्त—आज्ञा नहीं है ? किसकी आज्ञा नहीं है ?

विलासवती—क्षमा कीजिए देव, कवि किसी से मिलना नहीं चाहते ।

चन्द्रगुप्त—किन्तु मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ ।

[विलासवती चुप रहती है, चन्द्रगुप्त स्यन्दिका पर बैठ जाते हैं]

चन्द्रगुप्त—तुम जानती हो, आज कविवर महासम्राज्ञी को ग्रन्थ भेंट करने वाले है ?

विलासवती—जानती हूँ देव !

चन्द्रगुप्त—मैं जानना चाहता हूँ उस काव्य का क्या हुआ ?

विलासवती—वह अपूर्ण है ।

चन्द्रगुप्त—(आश्चर्य से) अपूर्ण है ?

विलासवती—जी, उसी के कारण वे आज एक सप्ताह से अस्वस्थ हैं ।

धन्वन्तरि—महाराज, मैं निवेदन कर चुका हूँ कि कालिदास को कोई शारीरिक कष्ट नहीं है केवल कोई मानसिक चिन्ता है । उसके लिए मैंने कई प्रयोग किए, किन्तु सब व्यर्थ हुए ।

चन्द्रगुप्त—(सोचकर) अच्छा देखो, कवि किस दशा में हैं ?

[विलासवती जाती है और लौटकर]

विलासवती—(प्रसन्नता से) महाराज वे लिख रहे हैं । मेरे पहुँचने की आहट भी उन्होंने नहीं सुनी ।

चन्द्रगुप्त—दीखते तो स्वस्थ थे न ?

विलासवती—मुख तो प्रसन्न दिखाई देता था । ओह ! वे तो सचमुच इस समय पूर्वावस्था में दिखाई दिए । ज्ञात होता है काव्य लिखा जा रहा है । महाराज ! मैं पिछले सप्ताह से एक क्षण के लिए भी उनके पास से नहीं हटी

हैं। जब वे चिन्ता करने या लिखने की चेष्टा करते तो उनके मुख पर स्वेद-बिन्दु उठते, तब मैं स्वयं उन्हें पोंछ देती थी, देव।

चन्द्रगुप्त—देवि ! तुम धन्य हो जिसने कवि को इतना अधीन किया है।

विलासवती—ओह ! वह कितना सुख का समय होगा जब मैं उनके वीणा-विनिन्दत स्वर से आगे की कथा सुनूंगी। महाराज, यह न जाने मेरे पूर्व जन्म के कौन-से सौभाग्य का फल है कि मेरे ऊपर कविवर ने अपने कृपा-कण बरसाए।

चन्द्रगुप्त—मैं स्वयं सोचकर गर्वोन्मत्त हो उठता हूँ, कि कालिदास मेरे राज्य में हैं। यह मेरा और इस युग का सौभाग्य है।

[कालिदास 'कुमार-सम्भव' का एक श्लोक गुनगुनाते हैं]

हृदये वससीतिमत्प्रियं यदवोचस्तदवमि कैतवम्,

उपचार-पदं न चेदिदं त्वमनंग, कथमक्षतारितः।

[पति कामदेव के भस्म होने पर विलाप करती हुई रति कहती है—
'तुम तो कहा करते थे तू मेरे हृदय में सदा बसती है। परन्तु अब मुझे ज्ञात हुआ कि ये बनावटी बातें थीं। यह केवल मुझे प्रसन्न करने के लिए कहते थे, नहीं तो आपके नष्ट हो जाने पर मैं कैसे अक्षत रहती ?']

धन्वन्तरि—प्रवाह चल पड़ा है। महाराज, कवि का स्वास्थ्य उनकी कविता है। यह भी एक प्रकार का ज्वर है, जब तक उदगार के रूप में नहीं निकल जाता तब तक उसे शान्ति नहीं मिलती।

चन्द्रगुप्त—तुम ठीक कहते हो धन्वन्तरि, कविता निर्भरिणी के समान है, जो बहने के पश्चात् ही शान्त होती है। विलासवती, मैं कवि से मिलूंगा।

धन्वन्तरि—महाराज, अपराध क्षमा हो। यह अवसर उनके पास जाने का नहीं है। वे कविता-प्रणयन में मग्न हैं।

चन्द्रगुप्त—(उदास होकर) अच्छा विलासवती, कवि का विशेष ध्यान रखना। इसके अतिरिक्त आज तुम्हारा नृत्य होगा। मैं तुम्हें सादर निमन्त्रित करता हूँ।

विलासवती—किन्तु, किन्तु मैं तो क्षमा चाहती हूँ देव !

चन्द्रगुप्त—मैं सब जानता हूँ । तुम्हें किसी प्रकार भी क्रय नहीं किया जा सकता । किन्तु इस ग्रन्थ के उपलक्ष में होनेवाले उत्सव नृत्य में क्या तुम्हें कोई आपत्ति है ? यह स्वयं-कालिदास का सम्मान है, देवि ।

धन्वन्तरि—महाराज का अनुरोध है, देवि ?

विलासवती—(सोचकर) मैं अवश्य आऊँगी ।

चन्द्रगुप्त—मुझे प्रसन्नता होगी । (दोनों चले जाते हैं ।)

विलासवती—(एक फूल तोड़कर सूँघती हुई) मेरे जीवन के प्रिय सहचर, मेरे हृदय के आनन्द, तुम्हारी सरस्वती इसी तरह मधु बरसाती रहे, यही मेरी आकांक्षा है । ('कुमार-सम्भव' का एक श्लोक गुनगुनाती है । इतने में एक मृग-छौना आकर विलासवती का वस्त्र पकड़ लेता है । विलासवती देखकर आनन्द में मग्न होकर उसे उठा लेती है ।) आतुर, तुम सचमुच आतुर हो । (प्यार करके उसे छोड़ देती है । मृग हटकर पास खड़ा हो जाता है ।) .

मदनिका—आज प्रातःकाल से यह मृगछौना बार-बार लतामण्डप में कवि के पास जाता है और निराश-सा लौट आता है देवि ।

विलासवती—ज्ञात होता है ध्यानमग्न होने के कारण कवि से इसे प्यार नहीं मिला । मैं स्वयं बहुत विह्वल हो जाती हूँ कभी-कभी, मदनिके । जीवन में मैंने एक ही व्यक्ति को हृदय दिया है, एक ही को प्राणदान किया है, और वे हैं कालिदास । देख तो सही वे क्या कर रहे हैं ? (इतने में कौशेय-पट्ट धारण किए भव्यमूर्ति-कालिदास गुनगुनाते आते हैं) ओ, (प्रसन्नता दिखाती हुई) क्या आप लिख चुके ?

कालिदास—(जिनकी आँखों में मद का उतार झलक रहा है फिर भी मोहक) तुम्हारे बिना मैं कुछ लिख सकता हूँ क्या ? (कुछ देर ठहर कर) ज्ञात होता है भगवती पार्वती ने मुझे उनके शृंगार वर्णन के अपराध में शाप दिया है । इसी कारण मैं यत्न करके भी कुछ नहीं लिख पा रहा हूँ । 'कुमार-संभव' पूर्ण न होगा, इसका मुझे खेद है । शृंगार किसी प्रकार भी गह्य हो सकता है, यह मेरी समझ में नहीं आता ।

विलासवती—हन लोग सभ्य हैं न ? सब प्रत्यक्ष, अनुमान गम्य होते हुए भी एक सीमा तक ही तो हमें जाना होगा । किन्तु पार्वती के शृंगार-वर्णन में मुझे तो कोई भी द्वेष अंश दिखाई नहीं देता । वह तो इतना मनोहर है कि पढ़कर रोमांच होता है । कवि, तुम्हारी वाणी में कितना रस है ?

कालिदास—स्फूर्ति तो तुम्हीं हो विलासवती, (श्लोक गाते हैं) विलासवती उनके बालों में हाथ फेरती है, मदनिका पंखा झलती है) मनुष्य और प्रकृति दोनों में संघर्ष चल रहा है कि कौन अधिक सुन्दर है । मेघ, बिजली, पूर्णानिशा, नदी, भूधर, कुसुम एक से एक सुन्दर; एक से एक अधिक मोहक हैं । मानों सम्पूर्ण विश्व का रस, आनन्द एक-एक में आकर एकत्र हो गया है । किन्तु...

विलासवती—किन्तु ..

कालिदास—मनुष्य इससे भी सुन्दर है । यही तो उस सौन्दर्य का परिज्ञाता है । यदि मनुष्य न होता तो कैसा लगता, प्रिये ?

विलासवती—जैसे तुम्हारे बिना मैं । (हँसती है)

कालिदास—और तुम्हारे बिना मैं कैसे होता, जानती हो ?

विलासवती—जानती हूँ ।

कालिदास—बताओ (उठ : है आँखों में आँखें डालकर) बोलो प्रिये !

विलासवती—जाइए, कविता लिखिए । मैं नहीं जानती । (हँसती हुई टहलने लगती है ।)

कालिदास—तुमने ठीक संकेत किया । न मैं कवि होता । न कुछ, भेड़ें चराता । यही न ?

विलासवती—(दौड़कर) नहीं, यह मेरा आशय नहीं, प्राणाधार !

कालिदास—यह विश्व चमक-रहित स्वर्ण-खण्ड होता, जो खान से निकलता है । व्यर्थ, सब व्यर्थ ।

विलासवती—(पास जाकर) आप न जाने कैसे इतना सुन्दर लिख जाते हैं, केवल यह बात मैं यत्न करके भी नहीं जान पाई !

कालिदास—इसमें जानने की क्या बात है ? यह भी एक वेग है मस्तिष्क,

हृदय से मिला हुआ प्राणों का वेग जिसमें रस की अतिमात्रा है। जैसे तुम्हें देखकर हृदय में एक प्रकार की पुलक, एक प्रकार की प्रसन्नता होती है। उसी प्रकार प्रकृति का सौन्दर्य देखकर मन में एक प्रकार का आल्लाद होता है। उस आल्लाद को, उस सौन्दर्य को बँधे शब्दों में उतार देने का नाम 'कविता' है। जो कवि जितनी सूक्ष्म भावना को तन्मयता के साथ, आत्मा में व्याप्त रस को पचाकर शब्दों के चित्रों द्वारा, कल्पना की कूर्चिका से मानव के हृदय-पटल पर प्रत्येक भाव चेष्टा से युक्त खींच सकता है वह उतना ही महान् कवि है।

विलासवती—ठीक है। अभी आप प्रकृति और पुरुष के संघर्ष की बात कह रहे थे न ?

कालिदास—हाँ, वस्तुतः पुरुष के भीतर जो सौन्दर्य की एवं ग्राह्य-अग्राह्य की भावना आई है, वह प्रकृति के कारण ही तो। पुरुष प्रकृति से ही पल्लवित हुआ है, उसके ज्ञान का प्रसार प्रकृति है। इसीलिए लौकिक जीवन में प्रकृति मुख्य है।

विलासवती—आपने एक जगह कहा है, मरण प्रकृति है और जीवन विकृति। यह क्या है ?

कालिदास—यह दूसरी बात है, वहाँ प्रकृति का अर्थ वास्तविकता है। मृत्यु का मूलरूप लय है और जीवन लय का विकार। जैसे कुसुम बीज की विकृति है। महाराज चाहते हैं कि प्रभावती के विवाह के लिए एक नाटक लिखा जाए। मैं सोचता हूँ वह कैसा नाटक हो ?

विलासवती—रस से छलछलाता हुआ, आनन्द से विभोर कर देने वाला और कैसा प्रियतम ? जिसमें भरने की तरह अजस्त्र गति से आनन्द बह निकले।

कालिदास—तुम्हारा रूप मैं उसमें दूंगा विलासवती, तुम्हारे रूप की मादकता उसमें होगी, तुम्हारे हृदय की विशालता उसमें चमकेगी। दर्शक और पाठक कह उठेंगे कि साक्षात् तुम्हीं उसमें प्रमुख पात्र हो।

विलासवती—(प्रसन्न होकर) किन्तु मैं तुम्हारे बिना उसमें कब चमक

सकूंगी, कवि ?

[कालिदास एकदम किसी बात का ध्यान आते ही चुप हो जाते हैं । विलासवती उनको उस रूप में देखकर बोलना बन्द कर देती है । कवि लिखना आरम्भ कर देते हैं । लिखते रहते हैं । विलासवती पंखा करती है और उनकी ओर देखती रहती है ।]

चतुर्थ दृश्य

[महाराज चन्द्रगुप्त का प्रासाद । उस दिन विशेष रूप से सुसज्जित रात्रि का समय । मखमली कालीनों और स्थूलोपधानों से युक्त । प्रत्येक व्यक्ति के आसन बने हुए हैं । बीच में महाराज का पादपीठ, उसके वाम भाग में महाराज्ञी ध्रुवदेवी का आसन । तदनुसार कुबेरनागा, उनकी दूसरी पत्नी का स्थान । दायीं ओर कालिदास तथा अन्य लोगों के बैठने की जगह । सामने वादित्रकों के साथ विलासवती के बैठने की जगह । प्रासाद में भण्डिचखों दीप जल रहे हैं । कुछ में अगुरुगंधः कस्तूरी की बत्तियाँ जल रही हैं । धीरे-धीरे वादित्रकों के साथ विलासवती आती है । उसके बाद राजा तथा अन्य कवि । प्रभावती कन्या कुबेरनागा के साथ । फिर ध्रुवदेवी जय-ध्वज के साथ पधारती हैं । ध्रुवदेवी तथा कुबेरनागा के हाथ में नील कमल, केश, में बाल कुन्द, मुख पर लोध्र-पुष्प का चूर्ण, जूड़ों में कुरबक पुष्प, कानों शिरीष लगे हुए हैं । एक परिचारिका कुमारगुप्त को लिए उनके पीछे आती है । दो परिचारिकाएँ व्यजन करती हुई पीछे चलती हैं । धीरे-धीरे सब आकर बैठ जाते हैं । केवल महाराज और कालिदास का स्थान रिक्त है ।

राजामात्य—कविवर नहीं आए, क्या कारण है ? महाराज, आया चाहते हैं ।

धन्वन्तरि—कवि आज सर्वथा स्वस्थ हैं, अब तक आ तो जाना चाहिए

विलासवती—वे आ रहे होंगे महामन्त्रिन् ।

ध्रुवदेवी—विलासवती, तुम कविवर की प्रेमपात्री हो । आज कवि जिस ग्रन्थ को भेंट करना चाहते हैं, उसके उपलक्ष में तुम्हारा नृत्य ही उपयुक्त होता इसलिए महाराज से आग्रह करके तुम्हें बुलाया है ।

गणदास—विलासवती कहीं भी नृत्य नहीं करती, केवल महादेव के सामने ही ये करती हैं, किन्तु महाराज के आग्रह से ही इन्होंने अपनी प्रतिज्ञा भंग की है महाराज्ञी ! ये देवदासी हैं ।

ध्रुवदेवी—राजा भी तो देवता होता है, गणदास ।

हरदत्त—मेरी शिष्या माधवी भी देवपाद में ही नृत्य करती थी, किन्तु महाराज ने उसकी नृत्य कला को सर्वप्रथम स्थान दिया इसलिए उसने महाराज के सम्मुख नृत्य करना स्वीकार किया । वह भी ऐसी वैसी नहीं है ।

गणदास—यह सब अप्रासंगिक वार्तालाप है । हरदत्त, माधवी का इस समय यहाँ क्या काम ?

हरदत्त—यदि वह आज अस्वस्थ न होती तो विलासवती की आवश्यकता नहीं थी, गणदास !

ध्रुवदेवी—नहीं-नहीं मेरे विशेष अनुरोध से ही विलासवती को सादर मन्त्रित किया गया है ।

वि. राजामात्य—(अपनी श्वेत दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए) महाराज्ञी यथार्थ जानती हैं, हरदत्त !

[जय-घोष के साथ महाराज आते हैं । सब खड़े हो जाते हैं चन्द्रगुप्त और]

नित्य चन्द्रगुप्त—कालिदास नहीं आए ?

राजामात्य—महाप्रभु, आ रहे हैं ।

म [महाराज के संकेत से विलासवती नृत्य करती है, इसी समय कालिदास पते हैं । घुंघरू बजते ही सब व्यक्ति सतर्क हो उठते हैं—पुष्पोद्गम]

छम छम छम छ —

छनन, छनन, छन—छम, छम, छम ।
 भूम, भूम, भूम, भूम भूम चूम, नभ चूम,
 गीत छम, स्वर छम, लय छम, ताल छम,
 मूर्छना—विमूर्छना प्ररोह—अवरोह छम,
 गति यति छम छम, ध्वनि छम, छम छम,
 पवन भी गई जम, हृदय की गति थम;
 विरति से छमा छम, छम, रति, यति छम
 [ताण्डव का मेघ के उद्गम के साथ नृत्य]
 शिव के डमरू सम, मेघ की गरज गम,
 डम डम डम डम गमक गमक गम,
 छम, छम, छम, छम, छम, छम,
 छनन, छनन, छन, छम, छम, छम ।

[इसकी पुनरावृत्ति होती है । मदोन्मत्त-से सब पारिषद धन्य-धन्य कह उठते हैं । नृत्य समाप्त होता है, सभा में निस्तब्धता छा जाती है । बहुत देर बाद ।]

चन्द्रगुप्त—धन्य है, विलासवती धन्य है । ऐसा नृत्य तो आज तक नहीं देखा ।

ध्रुवदेवी—साक्षात् शिव ताण्डव ! मेघ भी घिर आए, बिजली भी चमकने लगी ।

[एक-एक करके महाराजा, महाराज्ञी तथा राज्ञी कुबेरनागा अपना रत्न-हार विलासवती को भेंट करते हैं]

चन्द्रगुप्त—कविवर, ग्रन्थ तो समाप्त हो गया न ।

कालिदास—(उदास होकर) आगे की कथा नहीं लिख सकता, देव !

चन्द्रगुप्त—क्यों ?

कालिदास—सम्भव नहीं है, लेखनी मूक हो गई है, यत्न करके भी नहीं लिख पाया ।

चन्द्रगुप्त—कारण ?

कालिदास—कारण मैं स्वयं नहीं जानता । लिखने बैठता हूँ तो लेखनी रुक जाती है ।

ध्रुवदेवी—यत्न करो कविवर, मेरे पुत्र को दिया जाने वाला ग्रन्थ पूर्ण होना ही चाहिए ।

कालिदास—इस ग्रन्थ की अपूर्णता ही पूर्णता है । विश्वास कीजिए, 'कुमार-सम्भव' इससे आगे नहीं लिखा जा सकता ।

चन्द्रगुप्त—आश्चर्य है इतना सुन्दर काव्य और पूर्ण न हुआ !

ध्रुवदेवी—कविवर, आप कवि हैं । कवि भूत भविष्यत और वर्तमान का द्रष्टा होता है । क्या कारण है जो आप इसे पूर्ण नहीं कर सके ?

चन्द्रगुप्त—विश्वास नहीं होता जो आप चाहें वह न हो । आपके संकेतों पर राज्यों में परिवर्तन, प्रजा में नया विश्वास उत्पन्न किया जा सकता है ।

ध्रुवदेवी—तो क्या कारण है ?

कालिदास—कारण, कारण कवि स्वयं नहीं जानता ।

ध्रुवदेवी—मेरी प्रार्थना है काव्य पूरा कीजिए । अपूर्ण काव्य मेरे कुमार का अपमान है ।

कालिदास—मान अपमान मैं कुछ नहीं जानता । कविता प्रेरणा है, न जाने क्यों मेरी प्रेरणा कुण्ठित हो गई है । मुझे ज्ञात हो गया इस काव्य का आगे लिखा जाना असम्भव है ।

ध्रुवदेवी—तो मानना होगा आपका कवित्व समाप्त हो गया ?

चन्द्रगुप्त—नहीं, ऐसा मत कहो । 'रघुवंश' लिखा जा रहा है । उसकी गति में कोई व्यवधान नहीं है ।

कालिदास—हाँ, 'रघुवंश' लिखने की प्रेरणा बराबर बढ़ रही है । जब-जब 'कुमार-सम्भव' लिखने बैठा तभी 'रघुवंश' के छन्द, कथा लिख जाता रहा हूँ । जीजिए यह आपकी भेंट है ।

ध्रुवदेवी—अपूर्ण ग्रन्थ मैं स्वीकार नहीं कर सकती । (अचानक बालक रोने लगता है ।) मैंने बड़े आग्रह के साथ आपसे प्रार्थना की थी, किन्तु आपने

उसे ठुकरा दिया, कविवर !

कालिदास—(बुढ़ता से) देवि, मैं विवश हूँ। कवि की भाषा इस काव्य के सम्बन्ध में मूक हो गई है। (कालिदास का स्वर बुढ़, नेत्रों से ज्योति स्फुल्लिंग निकलते हैं, कभी वे नेत्र बन्द कर लेते हैं।)

ध्रुवदेवी—तो रहने दीजिए, मुझे यह स्वीकार नहीं है, कविवर ! (इतना कहते ही बालक वेग से रोने लगता है। ध्रुवदेवी की परिचारिका के चुप कराने तथा पुचकारने पर भी बालक गला फाड़-फाड़कर रोता ही रहता है। ध्रुवदेवी परिचारिका के साथ बालक को लेकर चली जाती है, बालक के रोने की आवाज आती रहती है। ध्रुवदेवी फिर लौट आती हैं।) न जाने कुमार को क्या हो गया ?

वराहमिहिर—देवि, हमको कवि का ग्रन्थ स्वीकार करना ही होगा। इसी में बालक का कल्याण है।

[ध्रुवदेवी चुप रहती है।]

कुबेरनागा—महारानी, सरस्वती का, कवि का अपमान न कीजिए। (बालक के रोने की ध्वनि) परिचारिका !

परिचारिका—देवि, विधाता की इच्छा है कि ग्रन्थ को अस्वीकार न किया जाए। (कालिदास जाने लगते हैं) ठहरिए कविवर, इसमें आपका दोष नहीं है।

परिचारिका—महारानी, बालक असंज हो रहा है। (ध्रुवदेवी चली जाती है।)

वराहमिहिर—महाराज, ! (पास जाकर) यदि यह ग्रंथ कुमार को भेंट न किया गया तो अनर्थ हो जाएगा। कवि का नहीं, भगवती सरस्वती का अपमान है।

राजामात्य—महाराज, आपने जो स्वप्न देखा था, वह उसी का प्रभाव है। नारद स्वयं कह गए थे कि काव्य के पूर्ण होने की सम्भावना कम है।

वराहमिहिर—यदि सरस्वती रूठ जाती तो 'रघुवंश' भी अपूर्ण रहन चाहिए। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। कालिदास भूठ नहीं कहते।

महाराज इसी में साम्राज्य का कल्याण है कि ग्रन्थ कुमार को भेंट किया जाए ।

चन्द्रगुप्त—बराहमिहिर, मैं क्या करूँ । महारानी नहीं चाहती ।

बराहमिहिर—महारानी के चाहना होगा । बालक उस समय तक रोना बन्द नहीं करेगा जब तक ग्रन्थ उसे भेंट नहीं किया जाएगा । (रोने की ध्वनि आती है ।)

चन्द्रगुप्त—बड़ा आश्चर्य है, बराहमिहिर !

राजामात्य—बड़ा आश्चर्य है; महाप्रभु ! (कालिदास जाने लगते हैं ।)

चन्द्रगुप्त—ठहरिए कविवर ! (बालक को लिए हुए ध्रुवदेवी आती है ।)

ध्रुवदेवी—महाराज न जाने कुमार को क्या हो गया है !

चन्द्रगुप्त—देवी हमको यह ग्रन्थ स्वीकार करना ही होगा, इसी में बालक का कल्याण है ।

[ध्रुवदेवी चुप रहती है ।]

कुबेरनागा—महारानी, इस तरह कवि का अपमान न कीजिए चलिए ।

ध्रुवदेवी—(पास जाकर) कविवर मैं आपका ग्रन्थ सहर्ष स्वीकार करती हूँ ।

चन्द्रगुप्त—यह उचित है, देवी ।

[ग्रन्थ लेकर आगे बढ़ते ही बालक चुप हो जाता है । कवि बालक को ग्रन्थ स्पर्श कराकर ध्रुवदेवी को भेंट करते हैं । आकाश में मेघ गरजने लगते हैं बिजली कड़कती है । कालिदास ग्रन्थ भेंट करते हुए नेत्र बन्द करके कहते हैं ।

अनवाप्तमवाप्तवयं न च किञ्चन विद्यते

लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ।

ध्रुवदेवी बालक को गोद में लेकर ग्रन्थ स्वीकार करती है । चन्द्रगुप्त सिर झुकाए खड़े हो जाते हैं । जयघोष होता है—‘कविवर कालिदास की जय’]

[पटाक्षेप]

